गोस्वामी तुलसीदास

लेखक
श्यामसुंदरदास

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथम संस्करण	१०००	१९३५
द्वितीय ,,	१०००	१९४१
तृतीय ,,	१०००	१९४५
चतुर्थ ,,	१०००	१९५१

निवेदन

इंडियन प्रेस-द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के नवीन संशोधित संस्करण के प्रस्तावनास्वरूप मैंने गोस्वामी जी का जीवन-चरित तथा उनके ग्रंथों का विवरण कुछ विस्तार से लिखा था। वह अब अलग पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है। इस आयोजन का एकमात्र उद्देश्य यही है कि गोस्वामी जी के भक्तों को उनके जीवन की सब ज्ञातव्य बातें ज्ञात हो जायँ तथा उनके ग्रंथों का पूरा-पूरा विवरण मिल जाय। आशा है यह पुस्तिका उच्च कक्षा के विद्यार्थियों तथा गोस्वामी जी के संबंध में छानबीन करनेवाले विद्वानों के काम की भी सिद्ध होगी।

४-१-४१ ई०

श्यामसुंदरदास

अध्यायों की सूची

गोसाईं तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास

(१) आविर्भाव-काल

हिन्दी-साहित्य का आरंभ १०५० संवत् के लगभग होता है। इसके पूर्व सिंध आदि पश्चिमीय प्रदेशों पर अरबों के आक्रमण प्रारंभ हो चुके थे, और एक विस्तृत भू-भाग पर उनका आधिपत्य, बहुत कुछ स्थायी रीति से, हो चुका था। पीछे से समस्त उत्तरापथ विदेशियों से पदाक्रांत होने लगा और मुसलमानों की विजय-वैजयंती लाहौर, देहली, मुलतान तथा अजमेर में फहराने लगी।

महमूद गजनवी के आक्रमणों का यही युग था और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने इसी काल में भारत-विजय के लिए प्रयत्न किये थे। पहले तो इस देश पर विदेशियों के आक्रमण, स्थायी अधिकार प्राप्त करके शासन जमाने के उद्देश्य से नहीं, केवल यहाँ की अतुल संपत्ति को लूट ले जाने की इच्छा से हुआ करते थे। महमूद गजनवी ने इसी आशय से सत्रह बार चढ़ाई की थी और वह देश के विभिन्न स्थानों से विपुल संपत्ति ले गया था। परन्तु कुछ समय के उपरांत आक्रमणकारियों के लक्ष्य में परिवर्तन हुआ, वे कुछ तो धर्मप्रचार की इच्छा से और कुछ यहाँ की सुख-समृद्धिशाली अवस्था तथा विपुल धन-धान्य से आकृष्ट होकर इस देश पर अधिकार करने की धुन में लगे। यहाँ के राजपूतों ने उनके साथ लोहा लिया और वे उनके प्रयत्नों को निष्फल करके उन्हें बहुत समय तक पराजित करते रहे, जिससे उनके पैर पहले तो जम नहीं सके; पर धीरे धीरे राजपूत शक्ति अंतःकलह से क्षीण होती गई और अंत में उसे मुस्लिम शक्ति के प्रबल वेग के आगे मस्तक झुकाना पड़ा।

यह युग घोर अशान्ति का था। ऐसे समय में हिन्दी-साहित्य अपना शैशव-काल व्यतीत कर रहा था।। देश की स्थिति के अनुकूल ही हिन्दी-साहित्य का विकास हुआ। भीषण हलचल तथा घोर अशान्ति के उस युग में वीरगाथाओं की ही रचना संभव थी। जिस समय कोई देश लड़ाइयों में व्यस्त रहता है और युद्ध की ध्वनि प्रधान रूप से व्याप्त रहती है उस काल में वीरोल्लासिनी कविताओं की ही गूँज देश भर में सुनाई देती है। ऐसी ही कविताओं का प्राधान्य इस युग में रहा, पर प्रसिद्ध वीरशिरोमणि हम्मीर देव के पतन के अनंतर हिन्दी-साहित्य में वीरगाथाओं की रचना शिथिल पड़ गई। कबीर आदि संत-कवियों के जन्म के समय हिन्दू जाति की यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवाद के लिए बहुत ही उपयुक्त थी। यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसका रुकना कदाचित् कठिन हो जाता, परन्तु कबीर आदि ने बड़े ही कौशल से इस अवसर से लाभ उठाकर जनता को भक्तिमार्ग की ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभाव का प्रचार किया। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के लिए जनता इस समय तैयार नहीं थी। मूर्तियों की अशक्तता वि० सं० १०८१ में बड़ी स्पष्टता से प्रकट हो चुकी थी, जब महमूद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत, हाथ पर हाथ रक्खे हुए श्रद्धालुओं के देखते देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट कर डाला और उसके श्रद्धालुओं में से हजारों को तलवार के घाट उतारा था, तथा लूट में अपार धन प्राप्त किया था। गजेन्द्र की एक ही टेर सुनकर दौड़ आनेवाले और ग्राह से उसकी रक्षा करनेवाले सगुण भगवान् जनता के घोर से घोर संकटकाल में भी उसकी रक्षा के लिए आते न दिखाई दिये। अतएव उनकी ओर जनता को सहसा प्रवृत्त करना असंभव था। पंढरपुर के भक्तशिरोमणि नामदेव की सगुण भक्ति जनता को आकृष्ट न कर

सकी। लोगों ने उसका वैसा अनुसरण न किया जैसा आगे चलकर कबीर आदि संत-कवियों का किया और अन्त में उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा। उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्म की भक्ति के ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुण की शक्ति का भली भाँति अनुभव नहीं किया जा सकता था, उसका आभासमात्र मिल सकता था। पर प्रबल जल-धारा में बहते हुए मनुष्य के लिए वह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस काम की जो उसकी रक्षा के लिए तत्परता न दिखलावे? उसकी ओर बहकर आता हुआ तिनका भी जीवन की आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसी का सहारा पाने के लिए वह अनायास हाथ बढ़ा देता है। सन्त-कवियों ने अपनी निर्गुण भक्ति के द्वारा भारतीय जनता के हृदय में यही आशा उत्पन्न करके उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की इस अथाह जल-राशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी। इस समय जो भक्ति का प्रवाह बहा वह निर्गुण उपासना का था। इसकी दो शाखायें हुईं। एक ज्ञान का आश्रय लेकर चली और दूसरी प्रेम का आश्रय लेकर। यद्यपि इससे जनता को संतोष नहीं हुआ किन्तु इसने सगुणोपासना के लिए लोगों को तैयार कर दिया। यह दो रूपों में चली—एक तो राम की भक्ति को लेकर और दूसरी कृष्ण की भक्ति को।

वैष्णव भक्ति की रामोपासिका शाखा का आविर्भाव महात्मा रामानन्द ने, विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, किया था। यद्यपि रामानन्द के पहले भी नामदेव तथा त्रिलोचन आदि प्रसिद्ध भक्त हो चुके थे, पर उन्होंने भक्ति-आन्दोलन को एक नवीन स्वरूप देकर तथा उसे अत्यधिक लोकप्रिय और उदार बनाकर हिन्दू-धर्म के उन्नायकों में सम्माननीय स्थान पर अधिकार पाया। कबीर, तुलसी और पीपा आदि या तो उनके शिष्य थे या शिष्य-

परम्परा में थे और इसी से उनके महत्त्व का अनुभव हम अच्छी तरह कर सकते हैं।

स्वामी रामानन्द यद्यपि रामानुज के ही अनुयायी थे, पर मन्त्र-भेद, तिलक-भेद तथा अन्य विभेदों के कारण कुछ लोग उन्हें श्रीवैष्णवसम्प्रदाय में नहीं मानते। वे त्रिदंडी संन्यासी नहीं थे, अतएव उनमें और श्रीसम्प्रदाय में भेद बतलाया जाता है। परंतु यह निश्चित है कि रामानन्द काशी के बाबा राघवानन्द के शिष्य थे और बाबा राघवानन्द श्रीसम्प्रदाय के वैष्णव सन्त थे। यद्यपि यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि रामानन्द और राघवानन्द में, आचार के सम्बन्ध में, कुछ मतभेद हो जाने के कारण रामानन्द ने अपना संप्रदाय अलग स्थापित किया, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि बाबा राघवानन्द की मृत्यु के उपरान्त रामानन्द जी ने रामभक्ति का मार्ग प्रशस्त कर उत्तर-भारत में एक नवीन भक्ति-मार्ग का अभ्युदय किया।

राम-भक्ति की शाखा महात्मा रामानन्द-द्वारा विकसित हुई। कबीर पीपा, रैदास, सेना, मलूक आदि सन्त सब रामानन्द के ऋणी हैं, यद्यपि उनके चलाये हुए सम्प्रदायों पर विदेशीय प्रभाव भी पड़े और अनेक साधारण विभेद भी हुए। जनता पर इन सन्तों का बड़ा प्रभाव पड़ा। परन्तु महात्मा रामानन्द का ऋण इन सन्तों तक ही परिमित नहीं है, प्रत्युत इनकी शिष्यपरम्परा में आगे चलकर गोस्वामी तुलसीदास हुए, जिनकी जगत्प्रसिद्ध रामायण हिन्दी-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रत्न तथा उत्तर-भारत के धर्मप्राण जन-साधारण का सर्वस्व है। कबीर आदि संतों के सम्प्रदाय देश के कुछ कोनों में ही अपना प्रभाव दिखा सके और पढ़ी-लिखी जनता तक उनकी वाणी पहुँच भी न सकी; परन्तु गोस्वामी तुलसीदास की कविता ऊँच-नीच, राजा-रंक, पढ़े-बेपढ़े, सबकी दृष्टि में समान रूप से आदरणीय हुई। तुलसीदास जी

के 'रामचरितमानस' का अब तक जितना प्रचार भारतवर्ष के उत्तर-खंड में बना हुआ है उतना और किसी ग्रंथ का कहीं आज तक नहीं हुआ। कहते हैं कि संसार में जितना प्रचार इंजील (बाइबिल) का है उतना और किसी ग्रंथ का नहीं। यह हो सकता है, पर तुलसीदास जी की रामायण का प्रचार भारतवर्ष में अपेक्षाकृत यदि अधिक नहीं, तो कम भी नहीं है। क्या राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार, दंडी मुनि, साधु और क्या दीन-हीन साधारण जन-समुदाय सबमें उनके मानस का पूर्ण प्रचार है। बड़े-बड़े विद्वानों से लेकर निरक्षर भट्टाचार्य तक उनके मानस से अपने मानस की तृप्ति करते और अपनी-अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार उसका रसास्वादन कर अपने को परम कृतकृत्य मानते हैं। इस ग्रंथ-रत्न ने भारतवर्ष और विशेषकर उसके उत्तर भाग का बड़ा उपकार भी किया है। रीति-नीति, आचरण, व्यवहार सब बातों में मानों तुलसीदास ही हिन्दू प्रजा-मात्र के पथ-प्रदर्शक हैं। प्रत्येक अवसर पर उनकी चौपाइयाँ उद्धृत की जाती हैं और जन-साधारण के लिए धर्मशास्त्र का काम देती हैं। इस ग्रंथ ने न जाने कितनों को डूबते से बचाया, कितनों को कुमार्ग पर जाने से रोका, कितनों के निराशामय जीवन-मंदिर में आशा का प्रदीप प्रज्वलित किया, कितनों को घोर पाप से बचाकर पुण्य का संचय करने में लगाया और कितनों को धर्मपथ पर डगमगाते हुए चलने में सहारा देकर सँभाला। कविता की दृष्टि से देखा जाय तो भी तुलसीदास जी का 'रामचरितमानस' उपमाओं और रूपकों का भांडार है। चरित्र-चित्रण में भी वह बहुत बढ़ा-चढ़ा है। कुछ लोग कहते हैं कि तुलसीदास में अनेक गुणों का समावेश है जो और कवियों में नहीं पाया जाता। इसी से उनकी चाह अधिक है। पर जन-साधारण तो इन गुणों की तुलना कर नहीं सकते। मेरी समझ में तुलसीदास की सर्व-

प्रियता और मनोहरता का मुख्य कारण उनका चरित-चित्रण और मानवीय मनोविकारों का स्पष्टीकरण है। इन दोनों बातों में वे इस पृथ्वी के जीवधारियों को नहीं भूलते। उनके पात्र स्वर्ग के निवासी नहीं, पृथ्वी से असंपृक्त नहीं। उनके कार्य, उनके चरित्र, उनकी भावनायें, उनकी वासनायें, उनके विचार, उनके व्यवहार सब मानवीय हैं। यही कारण है कि वे मनुष्यों के मन में चुभ जाते, उन्हें प्रिय लगते और उन पर अपना प्रभाव डालते हैं। कभी कभी यह देखा जाता है कि लेखक या कवि सर्वप्रियता प्राप्त करने के लिए अपने ऊँचे सिद्धान्त से गिर जाता है, पाठकों में कुरुचि उत्पन्न करता, और उनकी रक्षा करने के स्थान में उन्हें और भी गढ़े में ढकेल देता है। पर तुलसीदास जी अपने सिद्धान्त पर सदा अटल रहते हैं, वे कहीं आगा-पीछा नहीं करते। सदा सुरुचि उत्पन्न करते, सदुपदेश देते और सन्मार्ग पर लगते हैं। यह कृतकार्यता कम नहीं। इसके लिए कोई भी गौरवान्वित हो सकता है। फिर तुलसीदास जी से महात्मा, कवि और देशानुरागी का कहना ही क्या है!

(२) जीवनचरित की सामग्री

(१) भाषा के कवि प्रायः लोभवश अपने ग्रंथ में अपना और अपने आश्रयदाता का वृत्तान्त लिखा करते थे, परंतु गोस्वामी जी ने मनुष्यों का चरित्र न लिखने का प्रण कर लिया था, इसलिए उन्होंने अपना कुछ भी वृत्तान्त नहीं लिखा। उन्होंने कहीं-कहीं जो अपने चरित्र का आभास-मात्र दिया भी है तो वह केवल अपनी दीनता और हीनता दिखलाने के लिए। किसी-किसी ग्रंथ का समय भी उन्होंने लिख दिया है। इसलिए उनका चरित्र वर्णन करने के लिए दूसरे ग्रंथों और किंवदन्तियों का आश्रय लेना पड़ता है। सबसे प्रामाणिक वृत्तान्त बतलानेवाला ग्रंथ वेणीमाधवदास-कृत 'गोसाईं-चरित्र' है, जिसका उल्लेख बाबू

शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंहसरोज' में किया है। कवि वेणीमाधवदास पसकाग्राम-निवासी थे और गोस्वामीजी के साथ सदा रहते थे। परंतु खेद का विषय है कि अब तक वह ग्रंथ कहीं नहीं मिला। इस पुस्तक का सारांश "मूल गोसाईं-चरित्र" के नाम से बाबा वेणीमाधवदास ने संवत् १६८७ में नित्य पाठ करने के लिए लिखा था। सौभाग्य से यह मूल चरित्र प्राप्त हो गया है। इसके अनुसार सरवार के रहनेवाले पराशर गोत्र के प्रतिष्ठित ब्राह्मणों के कुल में, जो राजापुर में पीछे से बस गया था, तुलसीदास का जन्म १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी को हुआ। लड़का उत्पन्न होते ही रोया नहीं, उसके मुख से 'राम' निकला और उसके ३२ दाँत जन्म के समय में थे। यह देखकर लोगों को आश्चर्य हुआ। तुलसीदास के पिता को बड़ा परिताप हुआ। बन्धु-बांधवों से सलाह करने पर यह निश्चय हुआ कि यदि बालक तीन दिन तक जीता रहे तो सोचा जायगा कि क्या किया जाय। एकादशी को तुलसी की माता हुलसी की अवस्था बिगड़ गई। उसे ऐसा भास होने लगा कि अब मैं नहीं बचूँगी। उसने दासी को बुलाकर कहा कि अब मेरे प्राण-पखेरू उड़ा चाहते हैं। तू इस बालक को और मेरे सब आभूषणों को लेकर रातोंरात अपनी सास के पास चली जा नहीं तो मेरे मरते ही इस बालक को लोग फेंक देंगे। दासी बालक को लेकर चल पड़ी और इधर उसी दिन ब्राह्ममुहूर्त में हुलसी ने शरीर छोड़ा। इस बालक को चुनियाँ दासी ने पैंसठ मास तक पाला-पोसा, पर एक साँप के काटने से उसकी मृत्यु हो गई। तब लोगों ने तुलसीदास के पिता को संदेश भेजा। उन्होंने कहा कि हम ऐसे अभागे बालक को लेकर क्या करेंगे जो अपने पालक का नाश करता है। अस्तु, दैवी कृपा से बालक जीता रहा। उधर अनंतानंद के शिष्य नरहरियानंद को स्वप्न में आदेश हुआ कि तुम इस बालक को

रक्षा करो और उसे रामचरित्र का उपदेश दो। नरहरियानंद ने जाकर उस बालक को, गाँववालों की अनुमति से, अपने साथ लिया और उसका यज्ञोपवीत कर विद्यारंभ कराया। दस महीने तक अयोध्या में हनुमानटीले पर रहकर नरहरियानंद बालक को पढ़ाते रहे। हेमंत ऋतु आने पर वे बालक को लेकर सरयू और घाघरा के संगम पर स्थित शूकरक्षेत्र में आये और वहाँ पाँच वर्ष तक रहे। वहीं पर उन्होंने बालक को रामचरित का उपदेश दिया। वहाँ से घूमते-फिरते वे काशी पहुँचे और पंच-गंगा घाट पर ठहरे। वहाँ पर शेषसनातन नामक विद्वान रहते थे। उन्होंने नरहरियानंद से उस बालक को माँग लिया। उसको उन्होंने सब शास्त्रों का भली भाँति अध्ययन कराया। १५ वर्ष तक तुलसीदास यहाँ रहे। गुरु की मृत्यु होने पर उनकी इच्छा अपनी जन्म-भूमि देखने की हुई। वहाँ जाने पर उनको अपने वंश के विनष्ट हो जाने का पता लगा। लोगों ने उनके रहने के लिए घर बनवा दिया और वे वहाँ रहकर रामकथा कहने लगे। एक ब्राह्मण ने बड़े आग्रह से अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दिया। इस स्त्री से उनका इतना अधिक प्रेम हो गया कि उसे वे पल भर के लिए भी छोड़ न सकते थे। अचानक एक दिन उनकी स्त्री अपने भाई के साथ मायके चली गई। तुलसीदास दौड़े हुए उसके पीछे गये। यहाँ पर स्त्री के उपदेश के कारण उन्हें वैराग्य हुआ और वे राम की खोज में निकल पड़े। अनेक स्थानों पर घूमते-घूमते वे काशी में आये और यहाँ बसकर उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। अन्त में संवत १६८० श्रावण कृष्ण तीज शनिवार को उन्होंने शरीर छोड़ा।

बाबा वेणीमाधवदास ने अपने ग्रंथ में १३ संवतों का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार—

(१) जन्म—पन्द्रह सै चउवन विषै, कालिंदी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरेउ शरीर।

(२) यज्ञोपवीत—

पन्द्रह सै इकसठ माघ सुदी। तिथि पंचमी और भृगुवार उदी।
सरयूतट विप्रन जग्य किये। द्विज बालक को उपवीत दिये।

(३) विवाह—

पन्द्रह सै पार तिरासि विषै। सुभ जेठ सुदी गुरु तेरस पै।
अधिराति लगै जु फिरी भँवरी। दुलहा दुलही की बढ़ी पँवरी।

(४) स्त्री-वियोग—

शतपन्द्रह युक्त नवासि सरै सु अषाढ़ बदी दसमी हुँ परै।
बुधवासर धन्य सो धन्य घरी। उपदेसि सती तनु त्याग करी।

(५) रामदर्शन—

सुखद अमावस मौनिया, बुध सोरह सै साठ।

(६) सूरदास से भेंट—

सोरह सै सोरह लगे, कामद गिरि ढिग पास।
शुभ एकांत प्रदेस मह, आये सूर सुदास।

(७ रामगीतावली और कृष्णगीतावली की रचना—

जब सोरह सै बसु बीस चढ्यो। पद जोरि सबै शुचि ग्रंथ गढ्यो।
तिसु रामगितावलिनामधर्यो। अरु कृष्णगितावलि रांधि सर्यो।

(८) रामचरितमानस की रचना—

तस इकतीसा महँ जुरे, जोग लगन ग्रह रास।
नौमी मंगलवार शुभ,... ... .
यहि विधि भा आरम्भ, रामचरितमानस विमल।

(९) दोहावली की रचना—

.. ... चालिस संवत् लाग, दोहावलि संग्रह किये।

(१०) वाल्मीकि की प्रतिलिपि—

लिखे वाल्मीकी बहुरि, इकतालिस के माँहि।
मगसुर सुद सतिमी रवौ, पाठ करन हित ताहि।

(११) तुलसीसतसई की रचना—

माधव सित सिय जन्म तिथि, ब्यालिस संवत् बीच।
सतसैया बरने लगे, प्रेम वारि ते सींच।

(१२) टोडर की मृत्यु—

सोरह सै उनहत्तरौं, माधव सिततिथि धीर ।
पूरन आयू पाइ कै, टोडर तजै शरीर ।

(१३) तुलसीदास जी की मृत्यु—

संवत् सोरह सै असी, असी गङ्ग के तीर ।
श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर ।

इनमें जहाँ जहाँ संवत्, मास, पक्ष, तिथि और वार दिया है, गणना करने पर वे ठीक उतरते हैं ।

कुछ लोगों ने इस ग्रंथ को जाली बताया है और यहाँ तक कह डाला है कि अयोध्या में यह जाल रचा गया है। एक बात ध्यान रखने योग्य है कि इस ग्रन्थ की सबसे पुरानी प्रतिलिपि संवत् १८४८ की लिखी मौजा मरुव, पोस्ट ओवारा, जिला गया के पंडित रामाधारी के पास है। उनसे महात्मा बालकराम विनायक जी को प्राप्त हुई। वहाँ से प्राप्त करके पंडित रामकिशोर शुक्ल ने उसे छपवाया। अतएव यदि यह जाल है तो भी यह अयोध्या में नहीं रचा गया।

(२) दूसरा ग्रंथ नाभा जी का "भक्तमाल" है। यह बात प्रसिद्ध है कि नाभा जी से और गोस्वामी जी से वृन्दावन में भेंट हुई थी। नाभा जी वैरागी थे और तुलसीदास जी स्मार्त्त वैष्णव, खाने-पीने में संयम रखनेवाले। इसलिए पहले दोनों में न बनी; पीछे से तुलसीदास जी के विनीत स्वभाव को देख नाभा जी बहुत प्रसन्न हुए। अतः उनका लिखना भी बहुत कुछ ठीक हो सकता था, परन्तु उन्होंने चरित्र कुछ भी न लिखकर केवल गोस्वामी जी की प्रशंसा में यह छप्पय लिख दिया है—

"कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो ।
त्रेता काव्य निबध करी सत कोटि रमायन ।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन ॥

अब भक्तन सुख देन बहुरि वपु धरि (लीला) बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जी०—"

इस छप्पय से गोस्वामी जी के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता। भक्तमाल में उसके बनने का कोई समय नहीं दिया है। परन्तु अनुमान से यह जान पड़ता है कि यह ग्रंथ संवत् १६४२ के पीछे और संवत् १६८० के पहले बना, क्योंकि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोस्वामी गिरिधर जी का वर्णन उसमें वर्तमान क्रिया में किया है*। गिरिधर जी ने श्रीनाथ जी की गद्दी की टिकैती, अपने पिता के परमधाम पधारने पर, संवत् १६४२ में, पाई थी। इधर गोस्वामी तुलसीदास जी का भी वर्त्तमान रहना जान पड़ता है, क्योंकि "रामचरन रस-मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी" पद से गोस्वामी जी के जीते रहते ही भक्तमाल का बनना सिद्ध होता है। फिर यह प्रसिद्ध ही है कि गोस्वामी जी का परलोक संवत् १६८० में हुआ। अतएव भक्तमाल के, ऊपर दिये हुए, पद से केवल यह सिद्ध होता है कि भक्तमाल के बनने के समय (संवत् १६४२-१६८०) तुलसीदास जी वर्त्तमान थे।

(३) तीसरा ग्रंथ भक्तमाल पर प्रियादास जी की टीका है प्रियादास जी ने संवत् १७६९ † में यह टीका नाभा जी की

---

* श्री वल्लभ जी के वंश में सुरतरु गिरिधर भ्राजमान।

† नाभा जू को अभिलाश पूरन लै कियो मैं,
तो ताकी साखी प्रथम सुनाई नीके गाइ कै।
भक्ति विश्वास जाके ताही को प्रकास कीजै,
भीजै रंग हियो लाजै तन लड़ाइ कै॥

इच्छा* पूरी करने के हेतु बनाई थी। भक्त-महात्माओं के मुख से जो चरित्र सुने थे† उन्हें उन्होंने विस्तार के साथ लिखा है। प्रियादास जी ने गोस्वामी जी का चरित्र इस प्रकार लिखा है—

निसा सों सनेह बिन पूछे पिता गेह गई,
भूली सुधि देह भजे वाही ठौर आये हैं।
बधू अति लाज भई रिस सों निकस गई,
'प्रीति राम नई तन हाड़ चाम छाये हैं'॥
सुनी जग बात मानो ह्वै गयो प्रभाव वह,
पाछे पछिताय तजि काशीपुरी धाये हैं।
कियो तहाँ वास प्रभू सेवा लै प्रकाश कीनो,
लीनो दृढ़ भाव नेम रूप के तिसाये हैं॥५००॥

संवत् प्रसिद्ध दस सात सत उनहत्तर,
फागुन मास बदी सप्तमी बिताइ कै।
नारायनदास सुख रासि भक्तमाल लै कै,
प्रियादास दास उर बसौ रहो छाइ कै॥ ६२३॥

†महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मनहरन जू के,
चरन का ध्यान मेरे नाम मुख गाइये।
ताही समय नाभा जू ने आज्ञा दई,
लई धारि टीका विस्तारि भक्तमाल की सुनाइये॥
कीजिए कवित्त बन्द छंद अति प्यारो लगे,
जगै जग माँहि कहि बानी बिरमाइये।
जान निज मति ये पै सुनो भागवत,
सुक द्रुमन प्रवेश कियो ऐसेई कहाइये॥ १॥
...नहीं के दास दास प्रियादास जानो,
तिन लै बखानी मानो टीका सुखदाई है।
गोवर्धननाथ जू के हाथ मन पर्‍यो जाको,
कर्‍यो वास वृन्दावन लीला मिलि गाई है॥

शौच जल शेष पाइ भूतहू विशेष कोऊ,
बोल्यो सुख मानि हनुमान जू बताये हैं।
रामायन कथा सो रसायन है कानन को,
आवत प्रथम पाछे जात घृणा छाये हैं॥
जाइ पहिचान संग चले उर आनि आये,
वन मध्य जानि धाइ पाइ लपटाये हैं।
करैं सीताकार कही सकोगे न टारि मैं तो,
जाने रस सार रूप धरयो जैसे गाये हैं॥५०१॥

माँगि लीजै वर कही दीजे राम भूप रूप,
अति ही अनूप नित नैन अभिलाखिये।
कियौ लै संकेत वाही दिन ही सों लाग्यो हेत,
आई सोई समै चेत कवि छवि चाखिये॥
आये रघुनाथ साथ लक्ष्मण चढ़े घोड़े पर,
रंग गोरे हरे कैसे मन राखिये।
पाछे हनुमान आये बोले देखे प्रानप्यारे,
नेकु न निहारे मैं तो भले फेरि भाखिये॥५०२॥

हत्या करि विप्र एक तीरथ करत आयो,
कहै मुख राम हत्या टारिये हत्यारे को।
सुनि अभिराम नाम धाम मैं बुलाइ लियो,
दियो लै प्रसाद कियो सुद्ध गायो प्यारे को॥
भई द्विज सभा कहि बोलि कै पठायो आप,
कैसे गयो पाप संग लै के जैये न्यारे को।

मति अनुसार कह्यो लह्यो सुख सन्तन के,
अन्त को न पावै जोई गावै हिय आई है।
घट बढ़ि जानि अपराध मेरो छमा कीजै,
साधु गुनग्राही यह मानि कै सुनाई है॥६२१॥

पोथी तुम बाँचो हिये भाव नहिं साँचो अजू,
तातें मति काँचो दूरि करै न अधारे को ॥५०३॥
देखी पोथी बाँच नाम महिमा हू कही साँच,
ए पै हत्या करै कैसे तरै कहि दीजिये।
आवै जो प्रतीति कही याके हाथ जेवैं जब,
शिव जू के बैल तब पंगति में लीजिये ॥
थार मैं प्रसाद दियो चले जहाँ पान कियो,
बोले आप नाम के प्रसाद मति भीजिये।
जैसी तुम जानो तैसी कैसे कै बखानो अहो,
सुनि कै प्रसन्न पायो जै-जै धुन रीझिये ॥५०४।
आये निसि चोर चोरी करन हरन धन,
देखे श्यामघन हाथ चाप सर लिये हैं।
जब जब आवै बान साध डरपावै ए तो,
अति मँडरावै ए पै बली दूरि किये हैं ॥
भोर आय पूछे अजू साँवरो किसोर कौन,
सुनि करि मौन रहे आँसु डार दिये हैं।
दई सब लुटाई जानि चौकी रामराइ दई,
लई उन्ह शिक्षा सुद्ध भये हिये हैं ॥५०५॥
कियो तनु विप्र त्याग लागी चली संग तिया,
दूरि ही तें देखि कियो चरन प्रनाम है।
बोले यों सुहागवती मर्‍यो पति होहुँ सती,
अब तो निकसि गई जाहु सेवो राम है ॥
बोलि कै कुटुम्ब कही जो पै भक्ति करौ सही,
गही तब बात जीव दियो अभिराम है।
भये सब साध व्याधि मेटी लै विमुख ताकी,
जाकी बास रहै तौन सूझै श्याम धाम हैं ॥५०६॥
दिल्लीपति बादशाह अहिदी पठाये लेन,
ताको सो सुनायो सूनै विप्र ज्यायो जानिये।

देखिबे को चाहैं नीके सुख सो निबाहे आइ,
कही बहु विनय गही चले मन आनिये ॥
पहुँचे नृपति पास आदर प्रकास कियो,
दियो उच्च आसन लै बोल्यो मृदु बानिये ।
दीजै करामात जग ख्यात सब मात किये,
कही झूठी बात एक राम पहिचानिये ॥ ५०७ ॥
देखौं राम कैसे कहि कैद किये किये हिये
हूजिये कृपालु हनुमान जू दयाल हो ।
ताही समै फैल गये कोटि-कोटि कपि नये,
नोचै तन खैंचैं चीर भयो यों बिहाल हो ॥
फोरैं कोट मारैं चोट किये डारैं लोट पोट,
लीजै कौन ओट गाइ मानो प्रलय काल हो ।
भई तब आँखें दुख सागर को चाखें,
अब वेई हमें राखें भाखें वारौं धनमाल हो ॥ ५०८ ॥
आइ पाइ लिये तुम दिये हम प्रान पावैं,
आप समझावैं करामाति नेक लीजिये ।
लाजि दबि गयो नृप तब राखि लियो कह्यो,
भयो घर राम जू को बेगि छोड़ि दीजिये ॥
सुनि तजि दियो और कह्यो लैकै कोट नयो,
अबहूँ न रहे कोऊ वामें तन छीजिये ।
कासी जाइ वृन्दावन आ मिले नाभाजू सों,
सुन्यो हो कवित्त निज रीझ मति भीजिये । ५०९ ॥
मदनगोपाल जू को दरसन करि कही सही,
राम इष्ट मेरे दृग भाव पागी है ।
वैसोई सरूप कियो दियौ लै दिखाई रूप,
मन अनुरूप छवि देखि नीको लागो है ॥
काहू कह्यो कृष्ण अवतारी जू प्रशंस महा,
राम अंस सुनि बोले मति अनुरागी है ।

दसरथ सुन जानो सुन्दर अनूप मानो,
ईसता बताई रति कोट गुनी जाको है ॥ ११० ॥

(४) प्रियादास जी की टीका के आधार पर राजा प्रताप-सिंह ने अपने "भक्तकल्पद्रुम" और महाराज विश्वनाथसिंह ने अपने "भक्तमाल" में गोस्वामी जी के चरित्र लिखे हैं। इनमें जो बातें विशेष हैं वे यथास्थान लिख दी गई हैं। डाक्टर ग्रिअर्सन ने गोस्वामी जी के विषय में जो नोट्स 'इंडियन एंटीक्वेरी' में छपवाये हैं उनसे भी अनेक घटनाओं का पता लगता है। उनका भी यथास्थान समावेश किया गया है।

(५) 'मर्य्यादा' पत्रिका की ज्येष्ठ १९६९ की संख्या में श्रीयुत इंद्रदेव नारायण जी ने 'हिन्दी नवरत्न' पर अपने विचार प्रकट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन-सम्बन्ध में अनेक बातें ऐसी कही हैं जो अब तक की निर्धारित बातों में बहुत उलट-फेर कर देती हैं। इस लेख में गोस्वामी तुलसीदास जी के एक नवीन "चरित्र" का वृत्तान्त लिखा है और उससे उद्धरण भी दिये गये हैं। इस लेख में लिखा है—

"गोस्वामी जी का जीवन-चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुवरदास जी ने लिखा है। इस ग्रंथ का नाम "तुलसीचरित" है। यह बड़ा ही बृहद् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं—(१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा; इनमें भी अनेक उपखंड हैं। इस ग्रंथ की छन्द-संख्या इस प्रकार लिखी हुई है—'चौ० एक लाख तैंतीस हजारा, नौ सै बासठ छन्द उदारा।' यह ग्रंथ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवन-चरित-विषयक नित्य-प्रति के मुख्य मुख्य वृत्तान्त लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर, सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुवरदास जी बिरचित इस

आदरणीय ग्रंथ की कविता श्रीरामचरित-मानस के टक्कर की है और यह 'तुलसीचरित' बड़े महत्त्व का ग्रंथ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय वृहद् ग्रंथ के 'अवध खण्ड' में लिखा है कि जब श्री गोस्वामी जी घर से विरक्त होकर निकले तो रास्ते में रघुनाथ नामक एक पंडित से भेंट हुई और गोस्वामी जी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहा—

गोस्वामी जी का वचन

चौपाई

काल अतीत यमुन तरनी के। रोदन करत चलेहुँ मुख फीके ॥
हिय विराग तिय अपमित बचना। कंठ मोह बैठो निज रचना ॥
खींचत त्याग विराग बटोही। मोह गेह दिसि कर सत सोंही ॥
भिरे जुगल बल बरनि न जाहीं। स्पन्दन वपू खेत वन माहीं ॥
तिनहूँ दिशा अपथ महि काटी। आठ कोस मिसिरन की पाटी ॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला। बैठेहुँ देखि भूमि सुविसाला ॥
पंडित एक नाम रघुनाथा। सकल शास्त्र पाठी गुण गाथा ॥
पूजा करत डरत मैं जाई। दंड प्रनाम कीन्ह सकुचाई ॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना। बैठि गयउँ महितल भय माना ॥
बुध पूजा करि मोहि बुलावा। गृह वृतान्त पूछब मन भावा ॥

× × ×

जुवा गौर शुचि बर्द्धनि बिचारी। जनु विधि निज कर आपु सँवारी ॥
तुम विसोक आतुर गति धारी। धर्मशील नहिं चित्त बिकारी ॥
देखत तुम्हहिं दूर लगि प्रानी। अद्भुत सकल परस्पर मानी ॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे। किमि न तात तुम्ह प्रान पियारे ॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाँही। किधौं मूढ़ पुर वास सदा ही ॥
सन्यपात पकरे सब ग्रामा। चले भागि तुम तजि वह ठामा ॥
तब यात्रा विदेश कर जानो। बिदरि हृदय किमि मरे अयानी ॥

चित्त वृत्ति तुव दुख मह ताता। सुनत न जगत व्यक्त सब बाता ॥
मोते कहत अधिक सब लोगा। अजहुँ जुरे देखत तरु जोगा ॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी। तुमहिं धाय नहिं गहे अनारी ॥
जाति पाँति गृह ग्राम तुम्हारा। पिता पीठि का नाम अचारा ॥

दोहा—कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार।
मैं जानत भलि भाँति सब, सत अरु असत विचार ॥
चले अश्रु गद्‌गद् हृदय, सात्विक भयो महान्।
भुवि नख रेख लग्यौं करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान ॥

चौपाई

दयाशील बुधवर रघुराई। तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई ॥
अश्रु पोंछि बटु तोष देवाई। बिसे बीस सुत मम समुदाई ॥
लखौं चिह्न मिश्रन सम तोरा। विसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा ॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीशा। मेटहिं सकल दुसह दुख ईशा ॥
धीरज धरि मैं कथन विचारा। पुनि बुध कीन्ह विविध सतकारा ॥
परशुराम परपिता हमारे। राजापुर सुख भवन सुधारे ॥
प्रथम तीर्थ-यात्रा महँ आये। चित्रकूट लखि अति सुख पाये ॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनि-वासा। फिरे सकल प्रमुदित गत आसा ॥
वीर मरुतसुत आश्रम आई। रहे रैनि तहँ अँति सुख पाई ॥
परशुराम सोये सुख पाई। तह मारुत-सुत स्वप्न देखाई ॥
बसहु जाय राजापुर ग्रामा। उत्तर भाग सुभूमि ललामा ॥
तुम्हरे चौथ पीठिका एका। तप-समूह मुनि जन्म विवेका ॥
दम्पति तीरथ भ्रमे अनेका। जानि चरित अद्‌भुत गहि टेका ॥
दम्पति रहे पक्ष एक तहवाँ। गये कामदा शृंग सु जहवाँ ॥
नाना चमत्कार तिन्ह पाई। सीतापुर नृप के ढिग आई ॥
राजापुर निवास हित भाखा। कहे चरित कुछ गुप्त न राखा ॥
तीखनपुर तेहि की नृपधानी। मिश्र परशुरामहिं नृप आनी ॥

दोहा—अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र षट जासु।
बहु सन्माने भूप तहँ, कहि द्विज मूल निवासु॥
सरयू के उत्तर बसत, मंजु देश सरवार।
राज मंझवली जानिये, कसया ग्राम उदार॥
राजधानि ते जानिए, क्रोश विंश त्रय भूप।
जन्मभूमि मम और पुनि, प्रगट्यो बौध स्वरूप॥

चौपाई

बौध स्वरूप पेंड ते भारी। उपल रूप महि दीन बलारी॥
जैनाभास चल्यो मत भारी रक्षा जीव पूर्ण परिचारी॥
हेम सुकुल तेहि कुल के पंडित। क्षत्री धर्म सकल गुण मंडित॥
मैं पुनि गाना मिश्र कहावा। गणपति भाग यज्ञ महँ पावा॥
मम बिनु महा वंश नहिं कोई। मैं पुनि बिन संतान जो सोई॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा। तिमि सम पत्नि जानि मति भ्राजा॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका। तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा। प्रगट स्वप्न बहु बिधि दरसावा॥
भूप मानि मैं चलेहुँ रजाई। राजापुर निवास की ताई॥
निर्धन बसब राजापुर जाई। वृत्त कलिन्दि तीर सबुपाई॥
नगर गेह सुव मिलै कदापी। बसब न होहि जहाँ परितापी॥
अति आदर करि भूप बसावा। बाम-मार्ग पथ शुद्ध चलावा॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी। जिनके प्रकट शम्भु गिरिवासी॥
परशुराम काशी तन त्यागे। राम मंत्र अति प्रिय अनुरागे॥
शम्भु कर्णगत दीन सुनाई। चढ़ि विमान सुरधाम सिधाई॥
तिनके शङ्कर मिश्र उदारा। लघु पंडित प्रसिद्ध संसारा॥

दोहा—परशुराम जू भूप को, दान भूमि नहिं लीन।
शिष्य मारवाड़ी अमित, धन गृह दीन्ह प्रवीन॥
वचन सिद्धि शंकर मिसिर, नृपति भूमि बहु दीन।
भूप रानि अरु राज नर, भये शिष्य मति लीन॥

शंकर प्रथम विवाह ते, बसु सुत करि उत्पन्न।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध, निसि दिन ज्ञान प्रसन्न ॥

चौपाई

जोषित मृतक कीन अनु ब्याहा। ताते मोरि साख बुधनाहा ॥
तिनके संत मिश्र द्वै भ्राता। रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता ॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह महँ जाई। लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई ॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी। प्रथम पुत्र कौ नाम मुरारी ॥
सो मम पिता सुनिय बुध त्राता। मैं पुनि चारि सहोदर भ्राता ॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा। ताते लघु महेस गुणधामा ॥
कर्मकाण्ड पण्डित पुनि दोऊ। अति कनिष्ठ मङ्गल कहि सोऊ ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा। तुला अन्न धरि तौलि स्वधामा ॥
तुलसिराम कुलगुरू हमारे। जन्मपत्र मम देखि बिचारे ॥
हस्त प्रास पण्डित मति धारी। कह्यो बाल होइहि व्रतधारी ॥
धन विद्या तप होय महाना। तेजरासि बालक मतिमाना ॥
भरतखंड एहि सम यहि काला। नहि महान कोउ परमति शाला ॥
करिहिं खचित नृपगन गुरुवाई। वचन सिद्धि खलु रहहिं सदाई ॥
भ्रात सुन्दर सरूप सित देहा। बुध मंगल भाग्यस्थल गेहा ॥
ताते ग्रह विदेह मम जाई। अति महान पदवी पुनि पाई ॥
पंचम केतु रुद्र-गृह राहू। जतन सहस्र वंश नहिं लाहू ॥

दोहा- राज योग दोउ सुख सुएहि, होहिं अनेक प्रकार।
अब्दै दया मुनीस कोउ, लियो जन्म बर बार ॥

चौपाई

प्रेमहि तुलसि नाम मम राखी। तुलारोह तिय कहि अभिलाषी ॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी। कीन ब्याह सुन्दरी बिचारी ॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे। पिता मातु मम सहित निसारे ॥
भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा। षोडस मनुज रहे एक साथा ॥

× × ×

बानी विद्या भगिनि हमारी। धर्मशील उत्तम गुण धारी ॥

× × ×

दोहा—अति उत्तम कुल भगिनि सब, ब्याही अति कुशलात
हस्त प्रास पंडितन्ह गृह, ब्याहे सब मम भ्रात

चौपाई

मोर ब्याह द्वै प्रथम जो भयऊ। हस्त प्रास भार्गव गृह ठयऊ ॥
भई स्वर्गवासी दो नारी। कुलगुरु तुलसी कहेउ ब्रतधारी ॥
तृतिय ब्याह कचनपुर माँही। सोइ तिय वच विदेश अवगाही ॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई। मात-भ्रात परिवार छोड़ाई ॥
कुलगुरु कथन भई सब साँची। सुख धन गिरा अवर सब काँची ॥
सुनहु नाथ कंचनपुर ग्रामा। उपाध्याय लछिमन अस नामा ॥
तिनकी सुता बुद्धिमति एका। धर्मशील गुन पुंज विवेका ॥
कथा-पुराण-श्रवण बल भारी। अति कन्या सुन्दरि मतिधारी ॥
दोहा—मोह विप्र बहु द्रव्य ले, पितु मिलि करि उतसाह।
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतिय मम ब्याह ॥

× × ×

चौपाई

निज विवाह प्रथमहि करि जहवाँ। तीन सहस्र मुद्रा लिय तहवाँ ॥
षट् सहस्र लै मोहि विवाहे। उपाध्याय कुल पावन चाहे ॥

ऊपर लिखे हुए पदों का सारार्थ यह है कि सरयू नदी के उत्तरभागस्थ सरवार देश में मँझौली से तेइस कोस पर कसैयाँ ग्राम में गोस्वामी के प्रपितामह परशुराम मिश्र का जन्मस्थान था और यहीं के वे निवासी थे। एक बार वे तीर्थयात्रा के लिए घर से निकले और भ्रमण करते हुए चित्रकूट पहुँचे। वहाँ हनुमान जी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजापुर में निवास करो, तुम्हारी चौथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को

पाकर परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रान्त के राजा के यहाँ गये और उन्होंने राजा से हनुमान् जी आज्ञा को याथातथ्य कह कर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठविद्वान् जानकर अपने साथ अपनी राजधानी तीखनपुर में ले आया और उसने बहुत सम्मान-पूर्वक राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई; इससे वे बहुत खिन्न होकर तीर्थयात्रा को गये तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ और वे राजापुर लौट आये। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर उन्होंने राजापुर में शिव-शक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित होकर राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रकट की; परन्तु राजा ने उनके मत का अनुयायी होकर बड़े सम्मान-पूर्वक उनको रक्खा और भूमिदान दिया, परन्तु उन्होंने ग्रहण नहीं किया। उनके शिष्यों में मारवाड़ी बहुत थे; उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह और भूमि का लाभ हुआ। अन्त काल में काशी जाकर इन्होंने शरीर त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे और यज्ञ में गणेश जी का भाग पाते थे।

इनके पुत्र शंकर मिश्र हुए, जिनको वाक्सिद्ध प्राप्त थी। राजा और रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए और राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र और दो कन्यायें हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए—(१) सन्त मिश्र, (२) रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महापुरुष के पुत्र गोस्वामी जी हुए।

गोस्वामी जी चार भाई थे—(१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम, (४) मंगल। यही तुलाराम तत्वाचार्यवर्य भक्त-चूड़ामणि गोस्वामी जी हैं। इनके कुलगुरु तुलसीराम ने इनका

नाम तुलाराम रक्खा था। गोस्वामी जी के दो बहनें भी थीं; एक का नाम था वाणी और दूसरी का विद्या।

गोस्वामी जी के तीन विवाह हुए थे। प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ और दूसरी स्त्री के मरने पर तीसरा। यह तीसरा व्याह कंचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धि-मती से हुआ। इस विवाह में इनके पिता ने छः हजार मुद्रा ली थी। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामी जी विरक्त हुए थे।

इस ग्रंथ में दी हुई घटनायें और किसी ग्रंथ में नहीं मिलतीं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि यह चरित गोस्वामी तुलसी दास जी के शिष्य महात्मा रघुवरदास जी का लिखा है तो इसमें दी हुई घटनायें अवश्य प्रामाणिक मानी जायँगी। परन्तु इस ग्रंथ का पहला उल्लेख 'मर्यादा' पत्रिका में ही हुआ है तथा अन्य किसी महाशय को इस ग्रंथ के देखने, पढ़ने या जाँचने का अब तक सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। मैंने इस ग्रंथ के देखने का उद्योग किया था परन्तु उसमें मुझे सफलता नहीं हुई। इस अवस्था में जो जो बातें उक्त लेख से विदित होती हैं उनका उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा। उनके विषय में निश्चित रूप से कोई सम्मति नहीं दी जा सकती। बाबू शिवनन्दनसहाय ने इस ग्रंथ के विषय में यह लिखा है—

"हमें ज्ञात हुआ है कि केसरिया (चंपारन) निवासी बाबू इन्द्रदेवनारायण को गोस्वामी जी के किसी चेले की, एक लाख दोहे चौपाइयों में लखी हुई, गोस्वामी जी की जीवनी प्राप्त हुई है सुनते हैं, गोस्वामी जी ने पहले उसके प्रचार न होने का शाप दिया था; किन्तु लोगों के अनुनय-विनय से शापमोचन का समय संवत् १९६७ निर्धारित कर दिया। तब उसकी रक्षा का भार उसी प्रेत को सौंपा गया जिसने गोस्वामी जी को श्री हनुमान् जी से मिलने का उपाय बता श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन

का उपाय बताया था। वह पुस्तक भूटान के किसी ब्राह्मण के के घर पड़ी रही। एक मुन्शी जी उसके बालकों के शिक्षक थे। बालकों से उस पुस्तक का पता पाकर उन्होंने उसकी पूरी नकल कर डाली। इस गुरुतर अपराध से क्रोधित हो वह ब्राह्मण उनके वध के निमित्त उद्यत हुआ तो मुंशी जी वहाँ से चंपत हो गये। वही पुस्तक किसी प्रकार अलवर पहुँची और फिर पूर्वोक्त बाबू साहब के हाथ लगी। क्या हम अपने स्वजातीय इन मुंशी जी की चतुराई और बहादुरी की प्रशंसा न करेंगे? उन्होंने सारी पुस्तक की नकल कर ली, तब तक ब्राह्मण देवता के कानों तक खबर न पहुँची, और जब भागे तब अपने बोरिये-बस्ते के साथ उस वृहत्काल ग्रंथ को भी लेते हुए। इनके साथ ही क्या अपने दूसरे भाई को यह अश्रुतपूर्व और अलभ्य पुस्तक हस्तगत करने पर बधाई न देनी चाहिए? पर प्रेत ने उसकी कैसे रक्षा की और वह उस ब्राह्मण के घर कैसे पहुँची? यह कुछ हमारे संवाददाता ने हमें नहीं बताया। जो हो, जिस प्रेत की बदौलत सब कुछ हुआ, उसके साथ गोस्वामी जी ने यथोचित प्रत्युपकार नहीं किया। वनखंडी तथा केशवदास के समान उसके उद्धार का उपयोग तो भला करते, उल्टे उसके माथे ३०० वर्ष तक अपनी जीवनी की रक्षा का भार डाल दिया।"

(६) गोस्वामी जी ने अपने विषय में विनय-पत्रिका, कविता-वाली, हनुमानबाहुक आदि ग्रंथों में जो जो बातें लिखी हैं उनका उल्लेख यथास्थान किया जायगा।

(३) जन्म-समय

पंडित रामगुलाम द्विवेदी की सुनी-सुनाई बातों के अनुसार उनका जन्म-संवत् १५८९ है। इसे डा० ग्रिअर्सन ने भी माना है और 'मिश्रबन्धुविनोद' में भी यही स्वीकार किया गया है। इसके विपरीत 'शिवसिंहसरोज' में लिखा है कि वे संवत् १५८३

के लगभग उत्पन्न हुए थे। पहले से गोस्वामी जी की आयु ६१ और दूसरे से ९७ वर्ष आती है। अब तक विद्वानों ने गोस्वामी जी का जन्म-संवत् १५८९ ही माना है।

श्रीयुत इन्द्रदेवनारायण जी इस संबंध में लिखते हैं—"श्री गोस्वामी जी की शिष्य-परंपरा की चौथी पुश्त में काशी-निवासी विद्वद्वर श्री शिवलाल जी पाठक हुए, जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण पर संस्कृत-भाष्य तथा व्याकरणादि विषय पर भी अनेक ग्रंथ निर्माण किए हैं। उन्होंने रामचरितमानस पर भी मानसमयंक नामक तिलक रचा है। उसमें लिखा है—

दोहा—मन ४ अपर शर ५ जानिये, शर ५ पर दीन्हें एक १।
तुलसी प्रगटे रामवत्, रामजन्म की टेक॥
सुने गुरू ने बीच शर ५, सन्त बीच मन ४० गान।
प्रगटे सतहत्तर परे, ताते कहे चिरान॥

अर्थात् १५५४ सं० में गोस्वामी जी प्रकट हुए और पाँच वर्ष की अवस्था में गुरु से कथा सुनी, पुनः चालीस वर्ष की अवस्था में संतों से भी वही कथा सुनी और उन्होंने सतहत्तरवें वर्ष के बाद अठहत्तरवें वर्ष में 'रामचरितमानस' की रचना आरम्भ की। उनकी अठहत्तर वर्ष की अवस्था सं० १६३१ में थी और १६८० संवत् में वे परमधाम सिधारे। इस प्रकार १५५४ में ७७ जोड़ने से १६३१ संवत् हुआ। संवत् १५५४ वाँ साल मिला कर अठहत्तर वर्ष की अवस्था गोस्वामी जी की थी जब मानस आरम्भ हुआ और १२७ वर्ष की दीर्घ आयु भोग कर गोस्वामी जी परमधाम सिधारे।" १२७ वर्ष की आयु होना असम्भव बात नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि महात्मा रघुवरदास जी ने अपने तुलसीचरित में गोस्वामी जी के जन्म का कोई संवत् दिया है या नहीं।

बाबा वेणीमाधवदास ने इस संबंध में यह लिखा है—

जब कर्क में जीव हिमांशु चरै।
कुज सप्तम अष्टम भानु तनै। अभिहित सुन्दर साँझ समै।
पन्द्रह सै चउवन विषै, कालिन्दी के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरेउ शरीर ॥

संवत् १५५४ में दो श्रावण मास पड़े थे। शुद्ध श्रावण मास से तात्पर्य जान पड़ता है। गणना करने पर इस दिन शनिवार था। हमारी सम्मति में यही तिथि मान्य होनी चाहिए।

(४) जन्म-स्थान

इनके जन्म-स्थान के विषय में भी कहीं कोई लिखा प्रमाण नहीं मिलता। कोई कहता है कि इनका जन्म तारी में हुआ; कोई हस्तिनापुर, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर और कोई बाँदा जिले में राजापुर को इनका जन्म-स्थान बतलाता है। बहुत से लोग तारी को प्रधानता देते हैं। परन्तु पण्डित रामगुलाम के मत से राजापुर ही इनका जन्म-स्थान है। 'शिवसिंहसरोज' में भी बाबा वेणीमाधवदास के आधार पर इस स्थान को माना है, तथा महात्मा रघुवरदास जी के लेख से भी यही प्रमाणित होता है। इसके अतिरिक्त राजापुर में गोस्वामी जी की कुटी, मंदिर आदि हैं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामी जी का जन्म राजापुर में हुआ।*

---

*पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने जन्म-स्थान के विवाद को लेकर अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इस विषय का विवेचन किया है—वह यहाँ दिया जाता है—

'मैं पुनि निजगुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत' को लेकर कुछ लोग गोस्वामी जी का जन्म-स्थान ढूँढ़ने एटा जिले के सोरों नामक स्थान तक

सीधे पच्छिम दौड़े हैं। पहले पहल उस ओर इशारा स्व० रा० ब० लाला सीताराम ने (राजापुर के) अयोध्याकांड के स्व-सम्पादित संस्करण की भूमिका में दिया था। उसके बहुत दिन पीछे उसी इशारे पर दौड़ लगी और अनेक प्रकार के कल्पित प्रमाण सोरों को जन्मस्थान सिद्ध करने के लिए तैयार किये गये। सारे उपद्रव की जड़ है सूकर खेत, जो भ्रम से सोरों समझ लिया गया। 'सूकर छेत्र' गोंडा ज़िले में सरजू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ आस-पास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।

जिन्हें भाषा की परख है उन्हें यह देखते देर न लगेगी कि तुलसीदास जी की भाषा में ऐसे शब्द, जो स्थान-विशेष के बाहर नहीं बोले जाते हैं, केवल दो स्थानों के हैं—चित्रकूट के आस-पास के और अयोध्या के आस-पास के। किसी कवि की रचना में यदि किसी स्थानविशेष के भीतर ही बोले जानेवाले अनेक शब्द मिलें तो उस स्थान विशेष से कवि का निवाससंबंध मानना चाहिए। इस दृष्टि से देखने पर यह बात मनमें बैठ जाती है कि तुलसीदास जी का जन्म राजापुर में हुआ जहाँ उनकी कुमार अवस्था बीती। सरवरिया होने के कारण उनके कुल के तथा संबंधी अयोध्या, गोंडा और बस्ती के आस-पास थे, जहाँ उनका आना-जाना बराबर रहा करता था। विरक्त होने पर वे अयोध्या में ही रहने लगे थे। 'रामचरितमानस' में आये हुए कुछ शब्द और प्रयोग यहाँ दिये जाते हैं जो अयोध्या के आस-पास ही (बस्ती, गोंडा आदि के कुछ भागों में) बोले जाते हैं—

माहुर = विष। सरौं = कसरत; फहराना या फरहराना = प्रफुल्लचित्त होना (सरौं करहिं पायक फहराई)। फुर = सच। अनभल ताकना = बुरा मानना (जेहि राउर अति अनभल ताका)। राउर, रउरहि = आपको (भलउ कहत दुख रउरेहि लागा)। रमा लही = रमा ने पाया (प्रथम पुरुष, स्त्री०, बहुवचन, उ०—भरि जनम जे पाये न ते परितोष उमा रमा लहीं) कूटि = दिल्लगी, उपहास।

इसी प्रकार ये शब्द चित्रकूट के आस-पास तथा बघेलखंड में ही (जहाँ की भाषा पूरबी हिन्दी या अवधी ही है) बोले जाते हैं—

कुराय वे गड्ढे जो करेल पोली जमीन में बरसात के कारण जगह-जगह पड़ जाते हैं (काँट कुराय लपेटन लोटन ठाँवहि ठाँव बझाऊ रे। विनय०—)।

सुआर = सूपकार, रसोइया।

ये शब्द और प्रयोग इस बात का पता देते हैं कि किन स्थानों की बोली गोस्वामी जी की अपनी थी। आधुनिक काल के पहले साहित्य या काव्य की सर्वमान्य व्यापक भाषा ब्रज ही रही है, यह तो निश्चित है। भाषा काव्य के परिचय के लिए प्रायः सारे उत्तर-भारत के लोग बराबर इसका अभ्यास करते थे और अभ्यास-द्वारा सुन्दर रचना भी करते थे। ब्रजभाषा में रीतिग्रंथ लिखनेवाले चिंतामणि, भूषण, मतिराम, दास इत्यादि अधिकतर कवि अवध के थे और ब्रजभाषा के सार्वमान्य कवि माने जाते हैं। दास जी ने तो स्पष्ट व्यवस्था ही दी है कि 'ब्रजभाषा हेतु ब्रजवास ही न अनुमानौ'। पर पूरबी हिंदी या अवधी के संबंध में यह बात नहीं है। अवधी भाषा में रचना करनेवाले जितने कवि हुए हैं, सब अवध वा पूरब के थे। किसी पछाहीं कवि ने कभी पूरबी हिंदी या अवधी पर ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं किया कि उसमें रचना कर सके। जो बराबर सोरों की पछाहीं बोली (ब्रज) बोलता आया होगा वह 'जानकीमंगल' और 'पार्वतीमंगल' की-सी ठेठ अवधी लिखेगा, 'मानस' ऐसे महाकाव्य की रचना अवधी में करेगा और व्याकरण के ऐसे देशबुद्ध प्रयोग करेगा जैसे ऊपर दिखाये गये हैं? भाषा के विचार में व्याकरण के रूपों का मुख्यतः विचार होता है।

भक्त लोग अपने को जन्मजन्मांतर से अपने आराध्य इष्टदेव का सेवक मानते हैं। इसी भावना के अनुसार तुलसी और सूर दोनों ने कथा-प्रसंग के भीतर अपने को गुप्त या प्रकट रूप में राम और

कृष्ण के समीप तक पहुँचाया है। जिस स्थल पर ऐसा हुआ है वहीं कवि के निवासस्थान का पूरा संकेत भी है। 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाँड में वह स्थल देखिए जहाँ प्रयाग से चित्रकूट जाते हुए राम जमुना पार करते हैं और भरद्वाज के द्वारा साथ लगाये हुए शिष्यों को बिदा करते हैं। राम-सीता तट पर के लोगों से बातचीत कर ही रहे हैं कि—

तेहि अवसर एक तापस आवा। तेजपुंज लघु बयस सुहावा॥
कवि अलषित गति वेष बरागी। मन क्रम वचन राम-अनुरागी॥
सजल नयन तन पुलक निज इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥

यह तापस एकाएक आता है कब जाता है, कौन है इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। बात यह है कि इस ढंग से कवि ने अपने को ही तापसरूप में राम के पास पहुँचाया है और ठीक उसी प्रदेश में जहाँ के वे निवासी थे अर्थात् राजापुर के पास।

सूरदास ने भी भक्तों की इस पद्धति का अवलम्बन किया है। यह तो निर्विवाद है कि वल्लभाचार्य्य जी से दीक्षा लेने के उपरांत सूरदास जी गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के मंदिर में कीर्त्तन किया करते थे। अपने सूरसागर के दशम स्कंध के आरंभ में सूरदास ने श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए अपने को ढाढ़ी के रूप में नंद के द्वार पर पहुँचाया है—

नंद जू! मेरे मन आनंद भयो, हौं गोवर्द्धन तें आयो॥
तुम्हरे पुत्र भयो मैं सुनि कै अति आतुर उठि धायो॥

× × ×

जब तुम मदनमोहन करि टेरौ, यह सुनि कै घर जाऊँ।
हौं तो तेरे घर को ढाढ़ी, सूरदास मेरो नाऊँ॥

सबका सरांश यह है कि तुलसीदास का जन्मस्थान जो राजापुर प्रसिद्ध चला आता है, वही ठीक है।

(५) जाति

कोई इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण, कोई सरयूपारी और कोई सनाढ्य कहता है। राजा प्रतापसिंह ने भक्त-कल्पद्रुम में इन्हें कान्यकुब्ज लिखा है। पर 'शिवसिंहसरोज' में इन्हें सरयूपारी माना है। डाक्टर ग्रिअर्सन, पं० रामगुलाम द्विवेदी के आधार पर, इन्हें पराशर गोत्र के सरयूपारी दुबे लिखते हैं। "तुलसी पराशर गोत दुबे पतिऔजा के" ऐसा प्रसिद्ध भी है। विनय-पत्रिका में तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं—"दियो सुकुल जन्म सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।" पर यहाँ "सुकुल" से उत्तम कुल का अर्थ ही लगाना युक्ति-संगत जान पड़ता है।

'हिन्दी-नवरत्न' में लिखा है कि 'इनको सरयूपारीण मानने में दो आपत्तियाँ हैं। एक यह कि पूरा जिला बाँदा में और राजापुर के इर्द-गिर्द कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है न कि सरवरिया ब्राह्मणों की। सो यदि गोस्वामी जी द्विवेदी थे तो उनका कान्यकुब्ज होना विशेष माननीय है। दूसरे इनका विवाह पाठकों के यहाँ हुआ था जिनका कुल सरवरिया ब्राह्मणों में बहुत ऊँचा है और द्विवेदियों का उनसे नीचा। सो पाठकों की कन्या द्विवेदियों के यहाँ नहीं ब्याही जा सकती, क्योंकि कोई भी उच्चवंशवाला मनुष्य अपनी कन्या नीच कुल में नहीं ब्याहता। कनौजियों में पाठकों का घराना द्विवेदियों से नीचा है। अतएव पाठकों की लड़कियों का द्विवेदियों के यहाँ ब्याहा जाना उचित है।" पर तुलसीचरित से इनका सरवरिया ब्राह्मण गाना के मिश्र होना स्पष्ट है। इस बात का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि गोस्वामी जी का विवाह पाठकों के यहाँ हुआ। इसलिए इस सम्बन्ध में मिश्र-बन्धुओं का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। बाबा वेणीमाधवदास ने गोस्वामी जी के पुरखों का कसया में नहीं, पत्यौजा में रहना कहा है और उनके

कुल का अन्न फुरावे बतलाया है। काष्ठजिह्वा स्वामी ने भी कहा है—"तुलसी पराशर गोत दुबे पतिऔजा के।"

कुछ लोगों का कहना है कि तुलसीदास ने स्वयं कहा है 'जाये मंगन कुल' और इस आधार पर वे उन्हें भिखमंगे की संतान कह बैठते हैं, परन्तु तुलसीदास ने एक दूसरे स्थान पर स्वयं लिखा है— 'दियो सुकुल जन्म सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।" इससे स्पष्ट है कि वे उच्च कुल में उत्पन्न हुए थे। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने उन्हें सनाढ्य माना है। किन्तु सब बातों पर विचार करने से यह जान पड़ता है कि तुलसीदास जी सरयूपारी ब्राह्मण थे।

(३) माता-पिता

गोस्वामीजी ने स्पष्टरूप से कहीं अपने ग्रंथों में अपने माता पिता का नाम नहीं लिखा है। लोक में यह बात प्रसिद्ध है कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था और माता का नाम हुलसी आगे लिखा यह दोहा इसके प्रमाण में उद्धृत किया जाता है।—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

इस दोहे का उत्तरांश रहीम खानखाना का बनाया कहा जाता है। लोगों का कथन है कि इसमें 'हुलसी' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, जिसका यह प्रमाण है कि इनकी माता का नाम हुलसी था। बाबा बेणीमाधवदास ने स्पष्ट लिखा है कि उनकी माता का नाम हुलसी था। स्वयं तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में लिखा है— रामहिं प्रिय पावन तुलसी सी। तुलसि-दास हित हिय हुलसी सी॥

"तुलसी—चरित" के अनुसार तुलसीदास ने स्वयं अपने पूर्वजों तथा भाई बहिनों का वर्णन किया है जिसके अनुसार उनके प्रपितामह परशुराम मिश्र थे, जिनके पुत्र शंकर मिश्र हुए। इनके दो पुत्र सन्त मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र हुए। रुद्रनाथ मिश्र

के चार पुत्र और दो कन्यायें हुईं। पुत्रों के नाम गणपति, महेश, तुलाराम और मंगल तथा कन्याओं के वाणी और विद्या थे। ये तुलाराम हमारे चरित्र-नायक गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

'विनयपत्रिका' में तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं "राम को गुलाम नाम राम बोला राम राख्यो" इससे इनका एक नाम रामबोला होना स्पष्ट है। पर तुलसी—चरित्र में लिखा है—

तुलसी तुलाराम मम नामा। तुला अन्त धरि तौलि स्वधामा॥
तुलसि-राम कुलगुरू हमारे। जन्मपत्र मम देखि बिचारे॥
प्रेमहिं तुलसि नाम मम राखी। तुलारोह तिय कहि अभिलाषी॥

इससे यही सिद्धान्त निकलता है कि इनका नाम तुलाराम था, जिसे कुलगुरु ने तुलसी-राम कर दिया। पीछे से अपनी दीनता दिखाने के लिए अथवा यों ही ये अपने को तुलसीदास कहने लगे। विनयपत्रिका से उद्धृत पद का यही अर्थ माना जा सकता है, जैसा कि बाबा बेणीमाधवदास ने लिखा है कि जन्म होते ही इनके मुँह से राम शब्द निकला, इसलिए जन्म का नाम रामबोला पड़ा। 'कवितावली' में तुलसीदास जी स्वयं लिखते हैं—

"मातु, पिता जग जाइ तज्यो विधि हू न लिख्यो कछु भाल भलाई।"

विनयपत्रिका में भी तुलसीदास जी स्वयं कहते हैं—

"नाम राम रावरो हित मेरे।
स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाय कहौं टेरे।
जनक जननि तज्यो जनमि करम बनु बिधि सिरज्यो अवडेरे।
मोहु से कोउ-कोउ कहत राम को तो प्रसंग केहि केरे।
फिरयों ललात बिन नाम उदर लगि दुखहु दुखित मोंहि हेरे।
नाम-प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे।
साधत साधु लोक परलोकहि सुनि गुनि जनत घनेरे।
तुलसी के अवलम्ब नाम ही की एक गाँठि केई फेरे।"

"द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ
ह्वै दयाल दुनी दसौ दिसा दुख दोष दलन
छमि कियो न सम्भाषन काहूँ।
तनु तज्यों कुटिल कीट ज्यों त्यों मात-पिता हूँ।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग
मोसों सकुचत सब छुइ छाहूँ।
दुखित देख सन्तन कहेउ सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु पाँवर पातकि परिहरे न
सरन गये रघुबर और निबाहूँ।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति प्रतीत बिनाहूँ।
नाम की महिमा सील नाथ को मेरो
भलो बिलोकि अबतें सकुचाउँ सिहाहूँ"

इनसे स्पष्ट है कि माता-पिता ने इन्हें छोड़ दिया था। पंडित सुधाकर द्विवेदी के आधार पर डा० ग्रिअर्सन अनुमान करते हैं कि अभुक्त मूल में जन्म होने के कारण इनके माता-पिता ने इन्हें त्याग दिया था। मूल नक्षत्र में जन्मे लड़कों की मूल-शान्ति और गोमुख-प्रसव-शान्ति भी शास्त्र के लेखानुसार होती है, प्रायः लड़के अनाथ की तरह नहीं छोड़ दिये जाते। इसलिए यह भी अनुमान किया जाता है कि या तो माता-पिता ने इन्हें कबीर जी की तरह फेंक दिया हो, या इनके जन्म के पीछे ही उनकी मृत्यु हो गई हो। परन्तु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। क्योंकि इनके जन्म लेते ही यदि माता-पिता मर जाते या उन्होंने फेंक दिया होता तो तुलसीदास जी के कुल, वंश आदि का पता लगना कठिन होता। तुलसीचरित में यह लिखा है—

। कुल गुरु तुलसि कह्यो व्रतधारी॥
तृतीय व्याह कंचनपुर माही। सोइ तिय वच विदेश अवगाही॥

अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई । मात भ्रात परिवार छोड़ाई ॥
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतीय मम व्याह ॥

इससे यह स्पष्ट होता है कि तीसरे विवाह तक तुलसीदास जी अपने माता-पिता के साथ थे। तीसरा विवाह होने पर वे उनसे अलग हुए। दोनों बातें, अर्थात् तुलसीदास जी का स्वय कथन और तुलसीचरित का वर्णन, एक दूसरे के विपरीत पड़ती हैं और माता-पिता के छोड़ने की घटना को स्पष्ट नहीं करतीं। स्वयं तुलसीदास जी के अनुसार जन्म देकर माता-पिता ने उन्हें छोड़ दिया था और तुलसीचरित के अनुसार तीसरा व्याह होने पर माता-पिता से वे विमुख हुए। दोनों कथनों में समानता इतनी ही है कि ये माता-पिता से अलग हुए। पर कब हुए? इसमें दोनों कथनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। बाबा वेणीमाधवदास ने स्पष्ट लिखा है कि इनके जन्म होने पर लोगों को संदेह हुआ कि यह कोई राक्षस उत्पन्न हुआ है। अतः उनका अनुमान था कि यह तीन दिन के अन्दर मर जायगा। प्रसव के बाद इनकी माता हुलसी की अवस्था बिगड़ चली। उसे ऐसा भास हुआ कि मैं अब नहीं बचूँगी। इसलिए उसने अपनी दासी को समझा-बुझाकर तथा उसे अपने आभूषण देकर बालक को अपनी सास के पास हरिपुर पहुँचाने पर राजी कर लिया। मुनिया बालक को लेकर रातों-रात हरिपुर चली गई। उसकी सास चुनियाँ ने बालक को प्रेम से रख लिया और वह उसका पालन करने लगी। यह अवस्था ५ वर्ष ५ महीना रही। चुनियाँ की मृत्यु साँप के काटने से हो गई। तब उस बालक की देख-भाल करनेवाला कोई न रहा! वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता और किसी तरह माँग जाँचकर अपना पेट भर लेता। कोई कोई दयापूर्वक उसे खाने को दे देते थे। यह अवस्था लगभग दो वर्ष तक रही। तब नरहरिदास ने इन्हें अपनी रक्षा में

लिया। ये सब घटनायें तुलसीदास के अपने उल्लेख से अक्षर अक्षर मिलती हैं। अतएव इनको ठीक मानने में कोई आगा-पीछा न होना चाहिए।

(७) गुरु का नाम

तुलसीदास जी 'रामचरितमानस' में लिखते हैं—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझी नहि तसि बालपन,, तब अति रहेउँ अचेत ॥
तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु बुधि अनुसार।
भाषा बन्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध अस होई ॥

परन्तु गुरु का नाम उन्होंने कहीं नहीं दिया है। 'रामचरित मानस' के आदि में, मंगलाचरण में यह सोरठा लिखा है—

बंदउँ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप हर।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रबिकर-निकर ॥

इसी "नररूप हर" से लोगों ने निकाला है कि नरहरिदास इनके गुरु थे। नरहरिदास रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से थे, परन्तु इनकी गुरुपरम्परा की एक सूची डाक्टर ग्रिअसन को मिली है जो आगे दी जाती है। उक्त डाक्टर साहब को एक सूची पटने से भी मिली है जो लगभग इसी से मिलती है। अन्तर इतना ही है कि रामानुज स्वामी तक परम्परा नहीं दी है और कहीं कहीं नामों में कुछ अन्तर है तथा कोई कोई नाम नहीं भी हैं जैसे न० १३, १४ शठकोपाचाय और कूरेशाचार्य का नाम नहीं है, नं० १७ श्री वाकाचार्य के स्थान पर श्रमद्य-तीन्द्राचार्य है, नं० २३ श्री रामेश्वरानंद के स्थान पर श्रीराम मिश्र, नं० ३१ श्री अय्यानंद का नाम नहीं है, नं० ३७ श्री गरीबानन्द के स्थान पर श्री गरीबदास है।

१ श्रीमन्नारायण। २ श्री लक्ष्मी। ३ श्रीधर मुनि। ४ श्री सेनापति मुनि। ५ श्री कारिसूनि मुनि। ६ श्री सैन्यनाथ मुनि।

७ श्रीनाथ मुनि। ८ श्री पुण्डरीक। ६ श्रीराम मिश्र। १० श्री पारांकुश। ११ श्री यामुनाचार्य। १२ श्री रामानुज स्वामी। १३ श्री शठकोपाचार्य* १४ श्री कूरेशाचार्य। १५ श्री लोकाचार्य। १६ श्री पाराशराचार्य। १७ श्री वाकाचार्य। १८ श्री लोकार्य (लोकाचार्य)। १९ श्री देवाधिपाचार्य। २० श्री शैलेशाचार्य। २१ श्री पुरुषोत्तमाचार्य। २२ श्री गंगाधरानन्द। २३ श्री रामेश्वरानन्द। २४ श्री द्वारानन्द। २५ श्री देवानन्द। २६ श्री श्यामानन्द। २७ श्री श्रुतानन्द। २८ श्री नित्यानन्द। २९ श्री पूर्णानन्द। ३० श्री हर्यानन्द। ३१ श्री श्रय्यानन्द। ३२ श्री हरिवर्य्यानन्द। ३३ श्री राघवानन्द। ३४ श्री रामानन्द। ३५ श्री सुरसुरानन्द। ३६। श्री माधवानन्द। ३७ श्री गरीबानन्द। ३८ श्री लक्ष्मीदास जी ३९ श्री गोपालदास जी। ४० श्री नरहरिदास जी। ४१ श्री तुलसीदास जी।

स्वामी रामानन्द जी का समय-संवत् १३५६ से १४६७ तक है। बाबा वेणीमाधवदास ने तो स्पष्ट शब्दों में इनके गुरु का नाम नरहरिदास लिखा है जो रामानन्द के शिष्य अनंतानंद के शिष्य थे। इस हिसाब से नरहरिदास जी का सोलहवीं शताब्दी में होना संभव है। तुलसीचरित' में इसके संबन्ध में लिखा है कि गोस्वामी जी के गुरु रामदास जी थे।

चौपाई।

तब गुरु रामदास पहचानी। राम यज्ञ विधि श्रुति मत ठानी॥
द्वादस दिन फलहार कराई। दिये मौनव्रत मेरी ताँई॥
राम बीज जुत मन्त्र जपावा। कष्टसाध्य सब नियम करावा॥
बीज मन्त्र तुलसी के पाना। लिखि त्रिकाल ध्यावत हित ज्ञाना।

*रामानुजसंप्रदाय के ग्रंथों से स्पष्ट है कि शठकोपाचार्य रामानुज से पहले हुए हैं और यहाँ पीछे लिखा है इसलिए यह सूची ठीक नहीं है।

इन्हीं रामदास जी से गोस्वामी जी ने विद्या भी प्राप्त की।

चौपाई

पुनि भारती यज्ञ मम हेता। कियो परम गुरुदेव सचेता॥
पढ़ि मुनि पाणिनीय को ग्रंथा। बसु अध्याय शब्दकर पंथा॥
दीक्षित ग्रंथ समग्र विचारी। पढ़े कृपा गुरु शेखर भारी॥
कौस्तुभादि महभाष्य विचारा। × × × ॥
वरष एक महँ शब्दहिं जोई। पुनि षट्शास्त्र वर्ष महँ गोई॥
सकल पुरान काव्य अवलोकी। तीन वर्ष महँ भयो विशोकी॥

इस प्रकार रघुबरदास के मत को छोड़कर तुलसीदास की गुरु-परंपरा के विषय में हमें तीन मत मिलते हैं। एक के अनुसार वे रामानन्द की दूसरी पीढ़ी में, दूसरी के अनुसार आठवीं पीढ़ी में और तीसरी के अनुसार चौथी पीढ़ी में हुए थे। ऐतिहासिक दृष्टि से अंतिम मत ही ठीक जान पड़ता है।

(८) दीक्षा और शिक्षा

बाबा वेणीमाधवदास ने स्पष्ट लिखा है कि तुलसीदास को अनंतानंद के शिष्य नरहरियानंद ने ७ वर्ष की अवस्था में अपने आश्रय में लिया और संवत् १५६१ में विधिवत् उनका यज्ञोपवीत-संस्कार कर उन्हें विद्या पढ़ाना आरंभ किया। उन्होंने उनको पाणिनीय का व्याकरण घुखाया। अयोध्या में दस मास रहकर वे सूकर-खेत को गये। वहाँ ५ वर्ष तक रहे। यहीं पर उन्होंने अपने शिष्य को रामायण की कथा सुनाई। फिर अनेक स्थानों पर घूमते हुए वे काशी आये और अपने गुरु के स्थान पर ठहरे। वहाँ पर शेष सनातन जी ने बालक तुलसीदास को नरहरियानंद से माँग लिया और उसे वे प्रेमपूर्वक पढ़ाने लगे। १५ वर्ष तक यहाँ शिक्षक की सेवा में रहकर तुलसीदास जी ने सब शास्त्र पढ़े। गुरु का देहान्त होने पर उनको अपनी जन्मभूमि देखने की इच्छा हुई। राजापुर में जाकर उन्होंने देखा कि उनके वंश का नाश हो

गया और घर टूटकर खँडकर हो गया। वहाँ पर ग्रामवासियों ने नया घर बनवा दिया और उसमें बसकर तुलसीदास रघुपति की कथा लोगों को सुनाने लगे।

(६) विवाह, सन्तान और वैराग्य

यह प्रसिद्ध है कि इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, जिससे तारक नामक एक पुत्र भी हुआ था, जो वचपन में ही मर गया था। परन्तु 'तुलसीचरित' में लिखा है कि इनके तीन विवाह हुए थे। तीसरा विवाह कंचनपुर ग्राम के उपाध्यया लछमन की कन्या बुद्धिमती से हुआ था। इसी के उपदेश से गोस्वामी जी विरक्त हुए थे।

बाबा वेणीमाधवदास ने इस प्रसंग में लिखा है कि यमुना के उस पार तारपिता गाँव में भारद्वाज गोत्रीय एक धर्म निष्ठ ब्राह्मण रहते थे। उनके एक कन्या थी जिसके विवाह की वे चिंता में रहते थे। यमद्वितीया का स्नान करने वे राजापुर आये और वहाँ उन्होंने तुलसीदास की कथा सुनी। वे तुलसीदास की विद्या, बुद्धि और शारीरिक सौन्दर्य के कारण उन पर मुग्ध हो गये और उन्हीं को अपनी कन्या देने का उन्होंने निश्चय किया। चैत्र मास में वे ब्राह्मण देवता तुलसीदास के पास आये और उनसे अपना मनो-रथ कहा। पहले तो तुलसीदास ने बहुत समझाया-बुझाया किन्तु अंत में बहुत आग्रह करने पर मान गये। निदान संवत् १५८३ की ज्येष्ठ सुदी १३ को आधी रात के समय, जब कि उनकी आयु २८ वर्ष १० महीने की थी, उनका विवाह हो गया। तुलसीदास जी अपनी स्त्री पर बहुत आसक्त थे। वे ४ वर्ष तक गृहस्थी के झंझट में फँसे रहे। एक दिन उनकी स्त्री बिना कहे मैके चली गई। गोस्वामी जी से पत्नी-वियोग न सहा गया, वहाँ जाकर वे स्त्री से मिले। स्त्री ने उन्हें लज्जित करते हुए ये दोहे कहे—

लाज न लागत आपको, दौरे आयेहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहूँ मैं नाथ॥
अस्थि-चरम-मय देह मम, ता में जैसी प्रीति।
तैसी जौं श्रीराम महँ, होत न तौ भवभीति॥"

यह बात गोस्वामी जी को ऐसी लगी कि वे वहाँ से सीधे प्रयाग चले आये और विरक्त हो गये। स्त्री ने बहुत कुछ विनती की और भोजन करने को कहा, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। उनका साला भी बहुत दूर तक उनके पीछे-पीछे गया, पर किसी प्रकार भी समझाने-बुझाने पर वे लौटे नहीं। पतिवियोग में आषाढ़ बदी १० संवत् १५८६ को स्त्री का देहान्त हो गया। किंवदंती इस स्त्री को बहुत दिनों तक जीवित रखती है। कहते हैं कि घर छोड़ने के पीछे एक बेर स्त्री ने यह दोहा गोसाईं जी को लिख भेजा—

कटि की खीनी, कनक सी, रहति सखिन सँग सोई।
मोहि कटे की डर नहीं, अनत कटे डर होइ॥

इसके उत्तर में गोस्वामी जी ने लिखा—

कटे एक रघुनाथ सँग, बाँधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेमरस, पत्नी के उपदेस॥

बहुत दिनों के पीछे वृद्धावस्था में एक दिन तुलसीदास जी चित्रकूट से लौटते समय अनजानते अपने ससुर के घर आकर टिके। उनकी स्त्री भी बूढ़ी हो गई थी। वह बिना पहचाने हुए ही उनके आतिथ्य-सत्कार में लगी। उसने चौका आदि लगा दिया। दो-चार बातें होने पर उसने पहचाना कि ये तो मेरे पतिदेव हैं। उसने इस बात को गुप्त रक्खा और उनका चरण धोना चाहा; परन्तु उन्होंने धोने न दिया। पूजा के लिए उसने कपूर आदि ला देने को कहा; परन्तु गोस्वामी जी ने कहा कि यह सब झोले में मेरे साथ है। स्त्री की इच्छा हुई कि मैं भी इनके साथ रहती तो श्रीरामचन्द्र जी और अपने पति की सेवा करके जन्म सुधारती।

रात भर बहुत कुछ सोच-विचार कर उसने सवेरे गोस्वामी जी के सामने अपने को प्रकट किया और अपनी इच्छा कह सुनाई। गोस्वामी जी ने उसको साथ लेना स्वीकार न किया। तब उसने कहा—

* खरिया खरी कपूर लौं, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै, अचल करहु अनुराग ॥

यह सुनते ही गोस्वामी जी ने अपने झोले की वस्तुएँ ब्राह्मणों को बाँट दीं।

कुछ लोग यह भी अनुमान करते हैं कि तुलसीदास जी का विवाह ही नहीं हुआ था, क्योंकि उन्होंने 'विनयपत्रिका' में लिखा है—"ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चाहत हौं।" परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उनका विवाह हुआ ही नहीं था। यह कथन तो संसार की माया छोड़कर वैरागी होने के पीछे का है। विवाह की कथा पहले-पहल प्रियादास जी ने "भक्तमाल" की टीका में लिखी है। तभी से गोस्वामी जी के प्रत्येक जीवन-चरित्र में इसका उल्लेख होता आया है।

(१०) गोस्वामी जी की यात्रायें

प्रयाग से वे अयोध्या आये और वहाँ चार महीने रहे। यहाँ से चलकर वे २५ दिन में जगन्नाथपुरी पहुँचे। इस यात्रा में दो घटनायें महत्त्वपूर्ण हुईं। एक दुबौली गाँव में हुई। यहाँ वे चार घड़ी ही ठहरे। हरिराम से रुष्ट होकर उन्होंने उसे प्रेत होने का शाप दिया। कहते हैं कि उसी प्रेत ने आगे चलकर राम-दर्शन में गोस्वामी जी की सहायता की। दूसरी घटना में कुल

---

* यह दोहा 'दोहावली' में इस प्रकार लिखा है—
खरिया खरी कपूर सब, उचित न पिय तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मेलि कै, विमल, विवेक, विराग ॥ २५५ ॥

गाँव में हुई। यहाँ चारुकुँवरि की सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने वरदान दिया कि जिस वस्तु पर तू हाथ रखेगी वह कभी समाप्त न होगी। जगन्नाथपुरी में वे कुछ दिन रहे। यहीं पर उन्होंने वाल्मीकीय रामायण की प्रतिलिपि कराना आरंभ किया जो संवत् १६४१ में काशी में समाप्त हुई।

पुरी से रामेश्वर, द्वारका होते हुए वे बदरिकाश्रम गये; वहाँ से कैलास पर्वत की यात्रा की। पहले वे मानसरोवर गये। इस दृश्य का प्रभाव इन पर इतना अधिक पड़ा कि उसी के आधार पर उन्होंने रामचरित का 'मानस' रचा। इस रचना में मानों मानसरोवर की प्रतिछाया देख पड़ती है। यहाँ से वे रूपाचल और नीलाचल पर्वतों के दर्शन करने गये। वहाँ से फिर मान-सरोवर लौट आये और तब चित्रकूट के भव-वन में आश्रम बनाकर रहने लगे। इस यात्रा में १४ वर्ष १० मास और १७ दिन लगे।

गोस्वामी जी शौच के लिए नित्य एक वन में जाया करते थे। वहाँ एक बड़ा पीपल का पेड़ था। शौच से लौटते समय लोटे का बचा हुआ पानी रास्ते में उसी पेड़ की जड़ में डाल देते थे। उस पेड़ पर एक प्रेत रहता था। एक दिन वह उस जल से तृप्त होकर गोस्वामी जी के सामने आया और बोला, कुछ माँगो। गोस्वामी जी ने कहा कि हमें श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के सिवाय और कुछ इच्छा नहीं है। प्रेत ने कहा कि मुझमें इतनी शक्ति तो नहीं है, पर मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूँ। तुम्हारी कथा में एक बहुत ही मैला-कुचैला और कोढ़ी मनुष्य नित्य कथा सुनने आता है; सबसे पहले आता है और सबके पीछे जाता है। वे साक्षात् हनुमान् जी हैं। उन्हीं के चरण पकड़कर विनती करो। वे चाहेंगे तो दर्शन करा देंगे। गोस्वामी जी ने ऐसा ही किया और हनुमान् जी को पहचान कर अकेले में उनके पैर पकड़ लिये। उन्होंने लाख-लाख जी बचाना चाहा पर गोस्वामी

जी ने पीछा न छोड़ा। अन्त में हनुमान् जी ने आज्ञा दी कि "जाओ चित्रकूट में दर्शन होंगे।" गोस्वामी जी चित्रकूट आकर रहे। वे एक दिन वन में घूम रहे थे कि एक हरिण के पीछे दो सुन्दर राजकुमार, एक श्याम और एक गौर, धनुष-बाण लिये घोड़ा दौड़ाये जाते दिखलाई दिये। गोस्वामी जी रूप देखकर मोहित तो हो गये पर यह न जान सके कि यही श्री रामलक्ष्मण हैं। इतने में हनुमान् जी ने आकर पूछा "कुछ देखा गोस्वामी जी ने कहा, "हाँ, सुन्दर राजकुमार घोड़े पर गये हैं।" हनुमान् जी ने कहा, 'वही राम-लक्ष्मण थे।" गोस्वामी जी ने चित्त में उसी मनमोहनी मूर्त्ति का ध्यान रख लिया। यह कथा प्रियादास जी ने लिखी हैं और यही 'भक्त-कल्पद्रुम' में भी है। परन्तु डाक्टर ग्रिअर्सन इसको दूसरे ही प्रकार से लिखते हैं। वे लिखते हैं कि गोस्वामी जी चित्रकूट में एक दिन बस्ती के बाहर घूम रहे थे कि उन्होंने वहाँ रामलीला होती हुई देखी। प्रसंग यह था कि लंका जीतकर, राज्य विभीषण को देकर, सीता, लक्ष्मण और हनुमान् जी के साथ भगवान् अयोध्या को लौट रहे हैं। लीला समाप्त होने पर लौटे। रास्ते में ब्राह्मण के रूप में हनुमान् जी मिले। गोस्वामी जी ने कहा, "यहाँ बड़ी अच्छी लीला होती है।" ब्राह्मण ने कहा, "कुछ पागल हो गये हो आजकल रामलीला कहाँ? रामलीला तो आश्विन-कार्तिक में होती है।" गोस्वामी जी ने चिढ़कर कहा, "हमने अभी देखी है, चलो तुम्हें भी दिखा दें।" यह कहकर वे ब्राह्मण को साथ लेकर रामलीला के स्थान पर आये तो वहाँ कुछ भी न था। लोगों से पूछा तो लोगों ने कहा, "आजकल रामलीला कहाँ?" तब गोस्वामी जी को हनुमान् जी की बात स्मरण आई और वे बहुत उदास होकर लौट आये; कुछ खाया-पिया नहीं, रोते-रोते सो गये। स्वप्न में हनुमान् जी ने कहा, "तुलसी, पछताओ

मत, इस कलियुग में प्रत्यक्ष दर्शन किसी को नहीं होते; तुम बड़े भाग्यवान् हो जो तुम्हें दर्शन हुए। सोच छोड़ो, उठो और उनकी सेवा करो।" तुलसीदास जी का चित्त शान्त हुआ और वे रामघाट पर ध्यान में निमग्न रहने लगे। एक दिन रामचन्द्र जी ने प्रकट होकर उनसे चंदन माँगा। तुलसीदास चंदन घिसने लगे। उसी समय तोते के रूप में हनुमान् जी ने कहा—

चित्रकूट के घाट पर, भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसैं, तिलक देत रघुबीर ॥

तुलसीदास जी निर्निमेष नेत्रों से सुन्दरता देखने लगे और मूर्च्छित हो गये। तब हनुमान् जी ने प्रकट होकर उनको प्रकृतिस्थ किया। इस घटना का निर्देश तुलसीदास जी ने अपनी 'विनयपत्रिका' में किया है—

तुलसी तोकों कृपालु जो, कियो कोसलपाल,
चित्रकूट को चरित, चेतहु चित करि सो।

कुछ काल के उपरांत वे काशी आये और वहाँ रहने लगे। बीच बीच में वे अनेक स्थानों की यात्रा करते थे पर फिरकर काशी चले आते थे। काशी में गोस्वामी जी के, नीचे लिखे हुए, चार स्थान प्रसिद्ध हैं—

१—अस्सी पर—तुलसीदास जी का घाट प्रसिद्ध है। इस स्थान पर गोस्वामी जी के स्थापित हनुमान् जी हैं और उनके मन्दिर के बाहर बीसा यंत्र लिखा है जो पढ़ा नहीं जाता। यहाँ गोस्वामी जी की गुफा है। यहाँ पर गोस्वामी जी विशेष करके रहते थे, और अन्त समय में भी यहीं थे।

२—गोपालमन्दिर में—यहाँ श्री मुकुन्दराय जी के बाग के पश्चिम-दक्षिण के कोने में एक कोठरी है, जो तुलसीदास जी की बैठक कही जाती है। यह सदा बन्द रहती है, झरोखे में से लोग दर्शन करते हैं। केवल श्रावण शुक्ला ७ को

खुलती है और लोग जाकर पूजा आदि करते हैं। यहाँ बैठकर यदि सब 'विनयपत्रिका' नहीं तो उसका कुछ अंश उन्होंने अवश्य लिखा है क्योंकि यह स्थान बिन्दुमाधव जी के निकट है और पंचगंगा, बिन्दुमाधव का वर्णन गोस्वामी जी ने विनय-पत्रिका में पूरा-पूरा किया है। बिन्दुमाधव जी के अंग के चिह्नों का जो वर्णन गोसाईं जी ने किया है वह पुराने बिन्दुमाधव जी से, जो अब एक गृहस्थ के यहाँ हैं, अविकल मिलता है।

३—प्रह्लादघाट पर।

४—संकट-मोचन हनुमान्—यह हनुमान् जी नगवा के पास, अस्सी के नाले पर, गोस्वामी जी के स्थापित हैं। कहते हैं कि प्रह्लादघाट के ज्यो० गंगाराम जी ने, राजा के यहाँ जो द्रव्य पाया था उसमें से बहुत आग्रह करके १२ हजार गोस्वामी जी की भेंट किया। गोस्वामी जी ने उससे श्री हनुमान् जी की बारह मूर्तियाँ स्थापित कीं, जिनमें से एक यह भी है।

पहला निवास-स्थान हनुमान्-फाटक है। मुसलमानों के उपद्रव से वहाँ से उठकर वे गोपालमन्दिर में आये। वहाँ से भी, बल्लभ-कुलवाले गोसाइयों से बिरोध हो जाने के कारण, उठकर अस्सी आगये और मरण-पर्यन्त वहीं रहे। अस्सी पर आपने अपनी रामायण के अनुसार राम लीला आरम्भ की। सबसे पुरानी रामलीला अस्सी ही की है। अस्सी के दक्षिण ओर कुछ दूर पर जो स्थान है उसका नाम अब तक लंका है। वहाँ तुलसीदास जी की रामलीला की लंका थी।

एक बेर गोस्वामीजी भृगुआश्रम, हंसनगर, परसिया, गाय-घाट, ब्रह्मपुर और कान्तब्रह्मपुर होते हुए बेलापतार गये थे। बाबा वेणीमाधवदास के अनुसार, जनकपुर जाते हुए ये स्थान मार्ग में पड़े थे। गायघाट में उन्होंने हयवंशी राना गंभीरदेव का आतिथ्य स्वीकार किया था। कांत ब्रह्मपुर में सँवरू अहीर

के लड़के मँगरू अहीर ने बड़ी सेवा की। प्रसन्न होकर गोस्वामी जी ने उसे आशीर्वाद दिया कि जो तुम्हारे वंश के लोग किसी को न सतावेंगे और न चोरी करेंगे तो तुम्हारा वंश चलेगा। यहाँ से वे बेलापतार गये। यहाँ वे साधु धनीदास के मठ में ठहरे। यह साधु बड़ा धूर्त था। एक समय वह बड़ी आपत्ति में पड़ गया। गोस्वामी जी ने उसकी सहायता की और उसकी आपत्ति को टाल दिया। यहाँ से हरिहरक्षेत्र के संगम पर स्नान कर तथा षटपरी होते हुए जनकपुर गये और तब संवत् १६४० के आरंभ में काशी लौट आये। पर शीघ्र ही वे नैमिषारण्य की यात्रा पर गये। काशी से चलकर, अयोध्या, खनाही, सूकरखेत और पसका होते हुए वे लखनऊ पहुँचे। यहाँ वे कुछ दिन ठहरे। वहाँ से मडिहाउँ, रसूलाबाद, कोटरा होते हुए और संडीले होते हुए वे नैमिषारण्य पहुँचे। यहाँ पर बनखंडी बाबा ने सब तीर्थों का उद्धार करने का आयोजन किया था। यह काम गोस्वामी जी द्वारा संपन्न हुआ। यहाँ वे तीन महीना रहे। फिर वृन्दावन गये। यहाँ उनकी भेंट नाभा जी से हुई जिन्होंने गोस्वामी जी को घुमा-फिरा कर वृन्दावन के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों के दर्शन कराये, यहाँ से गोस्वामी जी चित्रकूट गये। वहाँ से दिल्ली अयोध्या होते हुए वे काशी लौट आये।

(११) मित्र और परिचित

(१) टोडर—टोडर नाम के एक बड़े भुँईंहार जमींदार काशी में थे। इन्हें गोसाइयों ने तलवार से काट डाला था। इनके पास पाँच गाँव थे जो काशी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले हैं। इनका नाम भदैनी, नदेसर, शिवपुर, जीतूपुर और लहरतारा है। भदैनी अब काशिराज के पास है और इसी में अस्सीघाट है। नदेसर में थोड़े दिन पहले सरकारी दीवानी कचहरी थी। शिवपुर पंचकोश में है। यहाँ पाँचों पाँडवों का

मन्दिर और द्रौपदीकुंड है। इस द्रौपदी कुंड का जीर्णोद्धार राजा टोडरमल ने कराया था। छीतूपूर भदैनी से और पश्चिम है। लहरतारा काशी के कंटून्मेंट स्टेशन के पास है। इसी लहरतारा की झील में 'नीमा' ने कबीर जी को बहते हुए पाया था। यहाँ कबीर जी की एक मढ़ी बनी है। टोडर के मरने पर उनके पौत्र कंधई और बेटे आनन्दराम में झगड़ा हुआ था। उसमें गोस्वामी जी पंच हुए थे। उन्होंने जो पंचायती फैसला लिखा था, वह ११ पीढ़ी तक टोडर के वंश में रहा। ११ वीं पीढ़ी में पृथ्वीपाल सिंह ने उसको महाराज काशिराज को दे दिया जो अब काशिराज के यहाँ है। टोडर के वंशज अब तक अस्सी पर हैं। कहते हैं कि इन टोडर के मरने पर गोस्वामी जी ने ये दोहे कहे थे—

चार गाँव को ठाकुरो, * मन को महा महीप।
तुलसी या कलिकाल में, अथये टोडर दीप॥

तुलसी राम-सनेह को, सिर पर भारी भार।
टोडर काँधा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥

तुलसी उर थाला बिमल, टोडर गुनगन बाग।
ये दोउ नयनन सींचिहौ, समुझि समुझि अनुराग॥

रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु, यही जानि संकोच॥

डाक्टर ग्रिअर्सन अनुमान करते हैं कि यह टोडर अकबर के प्रसिद्ध मंत्री महाराज टोडरमल थे, और उनके जन्मस्थान लहरपुर (अवध) को वे लहरतारा अनुमान करते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। टोडरमल टंडन खत्री थे, जिसके प्रणाम में शिवपुर के द्रोपदीकुंड का शिलालेख वर्तमान है। टोडर के वंशज खत्री हैं दूसरे यह कभी संभव नहीं है कि महाराज टोडरमल ऐसे भारी मंत्री का नाम एक नगर का काजी ऐसी साधारण रीति पर लिखे कि "आनन्दराम बिन टोडर बिन

---

*महतो चारों गावों का—पाठान्तर,

देवराय व कंधई बिन रामभद्र बिन टोडर मजकूर दर हूजूर आमदः" इत्यादि। तीसरे महाराज टोडरमल का कोई चिह्न काशी में वर्त्तमान नहीं है। संभव है कि बङ्गाल पर चढ़ाई के समय महाराज ने द्रौपदीकुंड का जीर्णोद्धार कराया हो। निदान यह निश्चय है कि महाराज टोडरमल और यह टोडर दो व्यक्ति थे।

राजा टोडरमल के दो लड़कों का नाम धरु टंडन और गोवर्धनधारी टंडन था और इस टोडर के लड़कों का नाम आनन्दराम और रामभद्र था तथा रामभद्र संवत् १६५६ के पहले मर चुका था। परन्तु राजा टोडरमल के दोनों लड़के उनके पीछे तक जीते रहे। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ये दोनों टोडर दो भिन्न व्यक्ति थे।

पंचनामे की प्रतिलिपि

श्री जानकीवल्लभो विजयते

द्विश्शरं नाभिसन्धत्ते द्विस्स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते ॥ १ ॥
तुलसी जान्यो दशरथहि, धरमु न सत्य समान।
रामु तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ॥ १ ॥
धर्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधी विष्णुर्जयति नासुरः ॥ १ ॥

अल्लाहो अकबर

चूँ अननन्दराम बिन टोडर बिन देओराय व कन्हई बिन रामभद्र बिन टोडर मजकूर

दर हूजूर आमदः करार दादन्द कि दर मवाजिये मतरुकः कि तफसीलि आं दर हिंदवी मजकूर अस्त

बिल मुनासफः बताराजीए जानिबैन करार दादेम व यक सद व पिञ्जाह बीघा जमीन ज्यादह किस्मत मुनासिफः खुद

दर मौजे भदैनी अनन्दराम मजकूर व कन्हई बिन रामभद्र मजकूर तजवीज नमूदः

* बरी मानी राजीगश्तः अतराफ सहीह शरई नमूदन्द बिना-बरि आं मुहर करदः शुद

मुहर सादुल्लाह बिन............

किस्मत अनन्दराम	किस्मत कन्हई
करिया करिया	करिया करिया
भदैनी दो हिस्सः लहरतारा दरोबिस्त	भदैनी सेह हिस्सः शिवपुर दरोबिस्त
करिया	करिया
नैपुरा हिस्सै टोडर तमाम	नदेसर हिस्सै टोडर तमाम
क़रिया	
चित्त पुरा खुर्द हिस्सै टोडर तमाम	अन्हरुल्ला (अस्पष्ट)

श्री परमेश्वर

संवत् १६६६ कुआर सुदी तेरसी बार शुभ दीने लिषीतं पत्र अनन्दराम तथा कन्हई क अंश विभाग पुर्वक आगे का आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मै शे प्रमान माना दुनहु जने विदित तफसील अंश टोडरमल के माह जे विभाग पदु होत रा............

अंश अनन्दराम	अंश कन्हई
मौजे भदैनी मह अंश पाँच तेहि मह अंश दुइ	मौजे भदैनी मह अंश पाँच तेहि मह तीनि अंश
आनन्दराम, तथा लहरतारा सगरेउ तथा छितपुरा	कन्हई तथा मौजे शिपुरा तथा
अंश टोडरमलु क तथा नयपुरी अंश	नदेसरी अंश
टोडरमलु क हील हुज्जती नास्ती	टोडरमलु क हील हुज्जती नास्ती

अंश अनन्दराम	अंश कन्हई
लीषितं अनन्दराम जे ऊपर लिषा से सही।	लीपितं कन्हई जे ऊपर लिषा से सही।
साछी रायराम रामदत्त सुत	साछी रामसिंह उद्धव सुत
साछी रामसेनी उद्धव सुत	साछी जादोराय गहरराय सुत
साछी उदैयकरन जगतराय सुत	साछी जगदीशराय महोदधी सुत
साछी जमुनी भान परमानन्द सुत	साखी चक्रपानी शोवा सुत
साछी जानकीराम श्रीकान्त सुत	साखी मथुरा मीठा सुत
साखी कवलराम वासुदेव सुत	साखी काशीदास वासुदेव सुत दसखत मथुरा
साखी चन्द्रभान केसोदास सुत	साखी खरगभान गोस्माईदास सुत
साछी पांडे हरी वलभ पुरुषोत्तम सुत	साखी रामदेव वीसंभर सुत
साखी भावश्रो केसोउदास सुत	साखी श्रीकान्त पांडे राजचक सुत
साखी जदुराम नरहरि सुत	साछी विट्ठलदास हरिहर सुत
साखी अयोध्या लछी सुत	साछी हीरा दशरथ सुत
साखी सवल भीष्म सुत	साखी लोहग कान्ना सुत
साछी रामचन्द्र वामदेव सुत	साखी नजराम शीतल सुत
साखी पितम्बरदास वर्धापूरन सुत	साखी कृष्णदत्त भगवन सुत
साखी रामराय गरीबराय करुणा करन सुत	साखी बिन्दराबन जय सुत
	साखी धर्नाराम मथुराय सुत
(शहीद व माकिह जलाल मकबूली वख्तही)	(शहीद व माकिह नाहिर दसन खाजे दोलत कानूनगोय)

(२) खानखाना—कहते हैं कि अकबर के प्रसिद्ध वज़ीर नवाव अवदुर्रहीम खानखाना से तुलसीदास जी का बड़ा स्नेह था। एक गरीब ब्राह्मण को अपनी कन्या का विवाह करना था। उसने तुलसी-

दास जी को घेरा। उन्होंने एक पुरजे पर यह आधा दोहा लिख कर दिया कि खानखाना के पास ले जाओ—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।"

खानखाना ने ब्राह्मण को धन देकर तुलसीदास जी को उत्तर लिख दिया—

"गोद लिये हुलसी* फिरै तुलसी सो सुत होय॥"

(३) महाराज मानसिंह—कहते हैं कि आमेर के महाराज मानसिंह और उनके भाई जगतसिंह प्रायः गोस्वामी जी के पास आया करते थे। एक मनुष्य ने एक दिन गोस्वामी जी से पूछा कि "महाराज, पहले तो आपके पास कोई भी नहीं आता था और अब ऐसे ऐसे बड़े लोग आपके यहाँ आते हैं, इसमें क्या भेद है ?"

गोस्वामी जी ने कहा—

"लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहे केहि काज †
सो तुलसी महँगो कियो, राम ग़रीब-निवाज॥
घर घर माँगे टूक पुनि, भूपति पूजे पाय।
ते तुलसी तब राम बिन, ते अब राम सहाय॥"

(४) मधुसूदन सरस्वती—बैजनाथदास ने लिखा है कि शंकरमतानुयायी श्री मधुसूदन सरस्वती ने बाद में प्रसन्न होकर यह श्लोक इनकी प्रशंसा में बनाया था—

"आनन्दकानने कश्चिज्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कविता मंजरी यस्य राम-भ्रमर-भूषिता॥"

---

* इस 'हुलसी' शब्द के दो अर्थों में यहाँ प्रयुक्त होने से कुछ लोग इसे इस बात का अस्पष्ट किन्तु तत्कालीन प्रमाण मानते हैं कि गोस्वामी जी की माता का नाम हुलसी था।

† खानखाना का दोहा है---"मनि मानिक महँगे किये, ससते तृन जल नाज।
रहिमन यातें कहत हैं, राम गरीब-नेवाज॥"

गोपालदास जी ने भी "रामायण-महात्म्य" में यही पाठ दिया है और लिखा है कि काशी के पण्डितों ने रामायण का आदर नहीं किया। उन्होंने कहा कि यदि इसको आनन्दकानन ब्रह्मचारी मानें तो हम लोग भी मानेंगे। ब्रह्मचारी ने रामायण की बड़ी प्रशंसा की और पीछे का श्लोक लिख दिया। काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह ने इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है—

"तुलसी जंगम तरु लसै, आनँदकानन खेत।
कविता जाकी मंजरी, राम-भ्रमर-रस लेत॥"

(५) नन्ददास जी—यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रज के प्रसिद्ध कवि, "रासपञ्चाध्यायी" के कर्त्ता, नन्ददास जी इनके भाई थे, परन्तु इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता। बैजनाथदास ने नन्ददास जी को इनका गुरुभाई लिखा है। नन्ददास जी गोकुलस्थ गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे और गोस्वामी जी के गुरु दूसरे थे। इससे यह भी ठीक नहीं ठहरता। संभव है कि दोनों के विद्या-गुरु कोई एक हों, या नन्ददास जी भी पहले नरहरिदास जी के शिष्य रहे हों, पीछे श्रीकृष्णानुरक्ति के कारण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हो गये हों। नन्ददास जी के विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है—"और सब गढ़िया, नन्ददास जड़िया।"

"दो सौ बाँवन वैष्णवों की बार्ता" में इनको तुलसीदास जी* का सगा भाई लिखा है। बाबा वेणीमाधवदास ने इनको गो० तुलसीदास का गुरुभाई और कान्यकुब्ज लिखा है।

(६) नाभा जी—"भक्तमाल" के प्रणेता नाभा जी इनसे मिलने काशी में आये थे; परन्तु उस समय गोस्वामी जी ध्यान में थे, नाभा

---

* ये दूसरे तुलसीदास सनाढ्य ब्राह्मण थे जैसा कि नन्ददास के जीवन-चरित्र से स्पष्ट है। वल्लभ-संप्रदाय में नन्ददास का जीवन-चरित्र प्रसिद्ध है।

जी से कुछ बात न कर सके। नाभा जी उसी दिन वृन्द्रावन चले गये। गोस्वामी जी ने जब यह सुना तो वे बहुत पछताये और नाभा जी से मिलने वृन्द्रावन गये। जिस दिन गोस्वामी जी नाभा जी के यहाँ पहुँचे, उस दिन उनके यहाँ वैष्णवों का भंडारा था, उसमें ये बिना बुलाये चले गये। नाभा जी ने जान-बूझकर इनका कुछ आदर न किया। परोसने के समय खीर के लिए कोई बर्तन न था। गोस्वामी जी ने तुरन्त एक साधु का जूता लेकर कहा कि इससे बढ़कर कौन उत्तम बर्तन है। इसपर नाभा जी ने इन्हें गले से लगा लिया और कहा कि आज मुझे भक्तमाल का सुमेरु मिल गया।

ऐसा न हो कि ये मुझे अभिमानी समझ लें और भक्तमाल में मेरी कथा बिगाड़ कर लिखें, इसी लिए तुलसीदास भंडारे में, वैरागियों की पंक्ति के अंत में बैठे और उन्होंने कढ़ी या खीर लेने के लिए एक वैरागी का जूता ले लिया। बहुत-से लोग आज तक कहते हैं कि नाभा जी के बनाये पद के, जो पहले उद्धृत किया जा चुका है, पहले चरण का ठीक पाठ यह है—"कलि कुटिल जीव तुलसी भये वाल्मीकि अवतार धरि।" इस पाठ से वाल्मीकि जी के साथ तुलसीदास जी की पूर्णोपमा हो जाती है, क्योंकि वाल्मीकि जी भी पहले कुटिल थे और तुलसीदास जी ने भी पहले नाभा जी से कुटिलता की।

(७) मीराबाई—मेवाड़ के राजकुमार भोजराज की वधू मीराबाई बड़ी ही भगवद्भक्त थीं। साधुसमागम में उनका समय बीतता था। इससे, संसार के उपहास के कारण, राणा जी को बहुत बुरा लगता था। उन्होंने बहुत समझाया-बुझाया पर मीराजी ने एक न मानी; तब उनको मारने के बहुत उपाय किये गये, परन्तु भगवत्कृपा से सब व्यर्थ हो गये। अन्त में कुटुम्बवालों की ताड़ना सहते-सहते मीराबाई का चित्त बड़ा दुखी हुआ। उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास

जी का यश सुना था, इससे उनको नीचे लिखा पत्र भेजा और पूछा कि मुझको क्या करना चाहिए ?—

"स्वस्ति श्री तुलसी गुण दूषणहरण गुसाईं * ।
बारहिंबार प्रणाम करहुँ हरे शोक समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई ॥
बालपने ते मीरा कीन्हीं गिरधरलाल मिताई।
सो तो अब छूटै नहिं क्योंहूँ लगी लगन बरियाई ॥
मेरे मात-पिता के सम हौ हरिभक्तन सुखदाई।
हमकूँ कहा उचित करिबो है सो लिखिए समुझाई।"

गोस्वामी जी ने उत्तर में यह पद लिख भेजा—

'जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
० तात मात भ्राता सुत पति हित इन समान कोउ नाहीं।
० रघुपति बिमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृति डेराहीं।
तज्यो पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महतारी।
गुरु बलि तज्यो कंत ब्रज-बनितन भे सब मगलकारी ॥
नातो नेह राम को मानिये सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटै बहुतै कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान तें प्यारो।
जा सो होइ सनेह राम सो सोई मतो हमारो ॥"

इसको पाकर मीरा जी ने घर छोड़ दिया और वे तीर्थाटन को निकल गईं।

यह आख्यायिका बहुत प्रसिद्ध है, परन्तु मीरा जी के समय में और इनके समय में बड़ा अन्तर है। मुंशी देवीप्रसाद के

---

*"श्री तुलसी सुखनिधान दुखहरन गोसाईं"

० बहुत पुस्तकों में ये दो चरण नहीं हैं।

अनुसार मीराबाई की मृत्यु सन् १६०३ में हुई। भारतेन्दु जी इस घटना का समय सन् १६२० निश्चित करते हैं। मूल गोसाईं चरित के अनुसार यह घटना संवत् १५६८ की है। ऐतिहासिकों में मीराबाई के समय में मतभेद है।

(८) वेणीमाधवदास के अनुसार संवत् १६१६ में सूरदास गोस्वामी जी से मिलने आये थे। कई लोगों ने सन्देह किया है कि वे कोई और सूरदास रहे होंगे।

(९) प्रसिद्ध गंग कवि भी तुलसीदास से मिलने गये थे। इन्होंने उनके माला जपने पर कुछ व्यंग्य किया। यह घटना १६६६ की कही जाती है।

(१०) कवि केशवदास से भी इनका समागम हुआ था। कोई इनका जीवित अवस्था में और कोई प्रेतयोनि में मिलना बतलाते हैं।

(११) बनारसीदास से इनसे कई बेर भेंट हुई थी और जहाँगीर बादशाह ने भी इनके दर्शन किये थे।

(१२) गोस्वामी जी के चमत्कार

(१) एक दिन तुलसीदास जी के यहाँ चोर चोरी करने गये तो देखा कि एक श्यामसुन्दर बालक धनुष-बाण लिये पहरा दे रहा है। चोर लौट गये। दूसरे दिन वे फिर आये और उन्होंने फिर उसी पहरेदार को देखा। तब उन्होंने सबेरे गोस्वामी जी से पूछा कि "आपके यहाँ श्यामसुन्दर बालक कौन पहरा देता है?" गोस्वामी जी समझ गये कि मेरे कारण प्रभु को कष्ट उठाना पड़ता है। बस, जो कुछ उनके पास था, सब लुटा दिया। चोर भी इस घटना से गोस्वामी जी के चेले हो गये।

डाक्टर ग्रिअर्सन ने चोरों की एक कहानी और भी लिखी है। वे लिखते हैं कि एक दिन काशी में, अँधेरी रात के समय गोस्वामी जी घर लौट रहे थे कि रास्ते में चोरों ने आकर घेर

लिया। गोस्वामी जी ने अविचलित भाव से हनुमान् जी का स्मरण किया और यह दोहा कहा—

"बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिस चोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपि केसरीकिसोर॥"*

हनुमान् जी ने प्रकट होकर चोरों को भगा दिया और गोस्वामी जी बेखटके चले गये।

(२) रामलीला और कृष्णलीला—यद्यपि यह बात प्रसिद्ध कि मेघा भगत की रामलीला, जो अब काशी में चित्रकूट की लीला के नाम से प्रसिद्ध है, गोस्वामी जी के पहले से होती थी; परन्तु वर्तमान शैली की रामलीला गोस्वामी जी के ही समय से आरम्भ हुई है। यह लीला अब तक अस्सी पर होती है और गोस्वामी जी के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें और लीलाओं से एक बात की विलक्षणता यह है कि और लीलाओं में खर-दूषण की जो सेना निकलती है उसमें राक्षस लोग विमान पर निकाले जाते हैं, किन्तु यहाँ पर राक्षस लोग, जैसा कि रामायण में लिखा है, भैंसे, घोड़े आदि पर निकलते हैं। इसकी लंका का स्थान अब तक लंका के नाम से प्रसिद्ध है।

रामलीला के अतिरिक्त गोस्वामी जी कृष्णलीला भी कराते थे। उनके घाट पर कार्तिक कृष्ण ४ को "कालियदमन" लीला अब तक बहुत सुन्दर रीति से होती है।

(३) मुर्दे का जिलाना—एक समय एक ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री सती होने के लिए जाती थी। गोस्वामी जी को उसने प्रणाम किया। इनके मुँह से निकल गया कि "सौभाग्यवती हो।" लोगों ने कहा कि "महाराज, इसका पति तो मर गया है, यह सती

* यह दोहा "दोहावली" में है। कहावत है कि जब गोस्वामी जी हनुमान फाटक पर रहते थे तब अलईपुर मुहल्ला के जोलाहों ने इन्हें बहुत तंग किया था, इसी पर इन्होंने यह दोहा बनाया था।

होने जाती है, और आपका आशीर्वाद कभी झूठा नहीं हो सकता।" गोस्वामी जी यह कहकर कि "अच्छा, जब तक मैं न आऊँ तब तक इसे मत जलाना" गंगास्नान को चले गये और तीन घंटे तक भगवत्स्तुति करते रहे। मुर्दा जी उठा और जैसे कोई सोते से जागा हो वैसे उठकर कहने लगा कि, "मुझको यहाँ क्यों लाये हो?" यह कथा प्रियादास जी ने भी लिखी है।

(४) बादशाह की कैद—मुर्दा जिलाने की बात बादशाह के कान तक पहुँची। उसने इन्हें बुला भेजा और कहा कि "कुछ करामात दिखलाइए।" इन्होंने कहा कि "मैं सिवा रामनाम के और कोई करामात नहीं जानता।" बादशाह ने इन्हें कैद कर लिया और कहा कि, "जब तक करामात न दिखलाओगे, छूटने न पाओगे।" तुलसीदास जी ने हनुमान जी की स्तुति की। हनुमान जी ने अपनी वानरों की सेना से कोट को विध्वंस कराना आरंभ कर दिया और ऐसी दुर्गति की कि बादशाह आकर पैरों पर गिरा और बोला कि "अब मेरी रक्षा कीजिए।" तब फिर गोस्वामी जी ने हनुमान जी से प्रार्थना की, और वानरों का उपद्रव कम हुआ। गोस्वामी जी ने कहा कि अब इसमें हनुमान जी का वास हो गया, इसलिए इसको छोड़ दो, नया कोट बनवाओ। बादशाह ने ऐसा ही किया। प्रियादास जी ने भी इस कथा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि अब तक कोई उस किले में नहीं रहता। परन्तु जान पड़ता है कि दिल्ली के नये किले के बनने पर पुराने किले में वानरों के अधिक निवास करने और कोट को तहस-नहस कर देने से ही यह बात प्रसिद्ध हो गई है। यह भी संभव है कि जहाँगीर ने इन्हें बुलाया हो और कुछ दिनों कैद रक्खा हो। तुलसीदास की मृत्यु संवत् १६८० में हुई और बादशाह शाहजहाँ संवत् १६८५ में गद्दी पर बैठा और इसी ने नई दिल्ली (शाहजहाँनाबाद) बसाई

और किला बनवाया। बैजनाथदास ने लिखा है कि जहाँगीर ने अपने बेटे शाहजहाँ के नाम से नगर बसाया; परन्तु ऐसा नहीं है, नई दिल्ली को शाहजहाँ ने ही बनवाया था।

तुलसीदास जी ने इस समय स्तुति के जो पद बनाये थे वे ये हैं:—

कानन भूधर बारि बयारि महा विष व्याधि दवा अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ तुलसी, सुत मातु पिता सुत बन्धु न नेरे॥
राखिहैं राम कृपालु तहाँ हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे॥

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से तुमसे न वसीले।
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढ़ुक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनों गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्वगहीले॥
सेवक को परदा फटै तूँ समरथ सी ले।
अधिक आपुते आपुनो सनमान सहो ले॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुंही ले।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रंगीले॥
समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे।
मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे॥
तेरी महिमा तें चलै चिंचिनी-चियाँ रे।
अँधियारे मेरी बार क्यों? त्रिभुवन उँजियारे॥
केहि करनी जन जानिकै सनमान किया रे।
केहि अब अवगुन आपनो करि डारि दिया रे॥
खायो खोंची माँगि मैं तेरो नाम लिया रे।
तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागि जिया रे॥

जो तोसों हतौ फिरौ मेरो हेतु हिया रे।
तो वेगि बदन देखावतो कहि वचन द ा रे॥
तो सों ज्ञाननिधान को सर्वज्ञ किया रे।
हौं समुझत साँई द्रोह की गति छार छिया रे॥
तेरे स्वामी राम से स्वामिनो सिया रे।
तहँ तुलसी केको कौन को ताको तकिया रे॥

उपद्रव-शान्ति के लिए जो पद बनाये थे वे ये हैं—

अति आ रत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी॥
लोक रीति देखी सुनी व्याकुल नरनारी।
अति बरषे अनबरषेहु देहिं दैवहि गारी॥
ना कहि आयो नाथ सों साँसति भय भारी।
कहि आयौ कीबी छमा निज ओर निहारी॥
समय साँकरे सुमिरिये समरथ हितकारी।
सो सब विधि दाया करै अपराध बिसारी॥
बिगरी सेवक की सदा साहबहिं सुधारी।
तुलसी पै तेरी कृपा निरुपाधि निहारी॥
कटु कहिये गाढ़े पड़े सुनि समुझि सुसाँई।
करहिं अनभले को भलो आपनो भलाई॥
समरथ सुभ जो पावई वीर पोर पराई।
ताहि तकै सब ज्यों नदी वारिधि न बोलाई॥
अपने अपने को भलो चहै लोग लुगाई।
भावै जो जेहिं तेहिं भजै सुभ असुभ सगाई॥
बाँह बोल दै थापिये जो निज बरिआई।
बिन सेवा सो पालिये सेवक की नाईं॥
चूकि चपलता मेरियै तूं बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ हौं अति नीच निचाई॥

बन्दिछोर बिरदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को तेरिये निकाई ॥
मंगल मूरति मारुत-नन्दन । सकल अमंगल-मूल-निकंदन ॥
पवन-तनय संतन-हितकारी । हृदयं बिराजत अवध-बिहारी ॥
मातपिता गुरु गनपति सारद । सिवा समेत संभु सुक नारद ॥
चरन-बन्दि बिनवौं सब काहू । देहु रामपद भक्ति निबाहू ॥
बन्दउँ राम लखन बैदेही । जे तुलसी के परम सनेही ॥

५) कृष्णमूर्ति का राममूर्ति हो जाना--दिल्ली से गोसाईं जी वृन्दावन गये । वहाँ वे एक मन्दिर में दर्शन करने गए। श्रीकृष्णमूर्ति का दर्शन करके उन्होंने यह दोहा कहा—

"का बरनउँ छबि आज की, भलें बिरजेउ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै (जब) धनुषबान लेउ हाथ ।"

कहते हैं कि उस समय भगवान् ने वहाँ श्रीरामचन्द्र जी के स्वरूप में दर्शन दिये, तब तुलसीदास जी ने दण्डवत् किया। इस कथा को प्रियदास जी ने भी लिखा है; किन्तु इसमें बड़ा सन्देह होता है, क्योंकि गोस्वामी जी ने कृष्णगीतावली बनाई, सैकड़ों स्थानों पर, अपने विनय के पदों में कृष्णगुणानुवाद किया और वे स्वयं कृष्णलीला (नागदमन-लीला) करते थे, फिर ऐसी द्वेष की बात क्योंकर करेंगे ?

(६) हत्या छुड़ाना—प्रियादास जी ने एक ब्राह्मण के हत्या छुड़ाने की कथा लिखी है जिसका वर्णन "विनय-पत्रिका" के प्रसंग में देखो ।

(७) फुटकर

१—कहते हैं कि रामायण बनाने के पीछे एक दिन गोस्वामी जी मणिकर्णिकाघाट पर नहा रहे थे। एक पंडित ने जिन्हें अपने पांडित्य का बड़ा घमंड था, इनसे पूछा, "महाराज, संस्कृत के

पंडित होकर आपने ग्रंथ को गँवारी भाषा में क्यों बनाया ?" गोस्वामी जी ने कहा; "इसमें संदेह नहीं कि मेरी गँवारी भाषा अभावपूर्ण है, पर आपके संस्कृत के नायिका-वर्णन से अच्छी है।" उसने पूछा, "यह कैसे ?" गोस्वामी जी ने कहा—

"मनि भाजन विष पारई पूरन अमी निहार।
का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु विवेक विचार ॥"

(यह दोहा "दोहावली" का ३५१ वाँ दोहा है पर उसमें और इसमें कुछ पाठान्तर है।)

२—घनश्याम शुक्ल संस्कृत के अच्छे कवि थे, पर भाषा कविता करना उन्हें अधिक रुचता था। उन्होंने धर्म-शास्त्र के कुछ ग्रंथ भाषा में बनाये। इस पर एक पंडित ने उनसे कहा कि "इस विषय को देववाणी संस्कृत में न लिखने से ईश्वर अप्रसन्न होते हैं; आगे से आप संस्कृत में लिखा किजिये।" उन्होंने तुलसीदास जी से सलाह ली। गोस्वामी जी ने कहा—

"का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवइ कामरी का लै करै कमाच॥"

(यह दोहावली का ५७१वाँ दोहा है और सतसई में भी है)

३—एक दिन एक अलखिये फ़क़ीर ने आकर "अलख, अलख" पुकारा। इस पर तुलसीदास जी ने कहा—

हम लख हमैं हमार लख हम हमार के बीच।
तुलसी अलखै का लखै रामनाम जपु नीच ॥"

४—ज़िला सारन के मैरवा गाँव में हरीराम ब्रह्म का ब्रह्मस्थान है। कहते हैं कि कनकशाही बिसेन के अत्याचार से आत्महत्या करके हरीराम ब्रह्म बने थे। यहाँ रामनवमी के दिन बड़ा मेला लगता है। कहते हैं कि इन हरीराम के यज्ञोपवीत के समय तुलसीदास जी भी उपस्थित थे।

५—बैजनाथ जी के ग्रंथ से नीचे लिखे स्फुट वृत्तान्त लिखे जाते हैं—

(१) गोस्वामी जी के दर्शन और उपदेश से एक वेश्या को ज्ञान हुआ और वह सब तजकर हरिभजन करने लगी।

(२) एक जीविकाविहीन पंडित बड़े दुखी थे। उनके लिए श्री गंगा जी ने गोस्वामी जी की विनती पर काशी के उस पार बहुत-सी भूमि छोड़ दी।

(३) मुर्दा जिलाने पर लोगों की भीड़ गोस्वामी जी के दर्शन को आया करती थी। गोस्वामी जी गुफा में रहते थे। एक बेर बाहर निकलकर सबको दर्शन दे देते थे। तीन लड़के दर्शन के नेमी थे। एक दिन वे तीनों नहीं आये, इससे गोस्वामी जी ने उस दिन किसी को दर्शन न दिये। लोगों को बहुत बुरा लगा। दूसरे दिन लड़के भी आये, परन्तु उनकी परीक्षा के लिए उस दिन गोस्वामी जी ने किसी को दर्शन न दिये। लड़कों से वियोग न सहा गया, तड़पकर मर गये। तब गोस्वामी जी ने चरणामृत देकर उनको जिलाया। लोग उनका प्रेम देखकर धन्य-धन्य कहने लगे।

(४) एक तांत्रिक दंडी की स्त्री को कोई वैरागी भगा ले गया था। दंडी को यक्षिणी सिद्ध थी। उसके द्वारा उसने बादशाह को पकड़ मँगाया और हुक्म जारी करा दिया कि सबकी माला उतार ली जाय और तिलक मिटा दिये जायँ। जब काशी में गोस्वामी जी के पास राजदूत आये तो सबको भयंकर काल का रूप दिखाई दिया। सब भागे और जिन लोगों की कंठी माला उतरी थी वह सब, गोस्वामी जी के प्रताप से, आपसे आप उनके पास पहुँच गई।

(५) अयोध्या का एक भंगी काशी में आकर रहता था। उसके मुँह से अवध का नाम सुनकर गोस्वामी जी प्रेमविह्वल हो गये। उन्होंने उसका बड़ा सतकार किया और बहुत कुछ देकर उसे बिदा किया।

(६) एक समय वे जनकपुर गये थे। वहाँ के ब्राह्मणों को श्री रामचन्द्र जी के समय से बारह गाँव माफी में मिले थे, जिनको पटने के सूबेदार ने छीन लिया था। गोस्वामी जी ने श्री हनुमान जी की सहायता से उनके पट्टे फिर ब्राह्मणों को लौटवा दिये।

(७) काशी में, वनखंडी में, एक प्रेत इनके दर्शन से प्रेतयोनि से मुक्त हो गया।

(८) चित्रकूट-यात्रा के समय रास्ते में एक राजा की कन्या को चरणामृत देकर इन्होंने पुरुष बना दिया। इसके प्रमाण में दोहावली के ये दोहे हैं—

"कबहुँक दरसन सत के पारस मनी अतीत।
नारी पलट सो नर भयो लेत प्रसादी सीत॥
तुलसी रघुबर सेवतहिं मिटिगो कालो काल।
नारी पलट सो नर भयो ऐसे दीन दयाल॥"

(९) प्रयाग में वे गोसाईं मुरारिदेव जी से मिले थे।

(१०) मलूकदास और स्वामी दरियानंद से इनकी भेंट हुई थी।

(११) चित्रकूट मंदाकिनी में एक ब्राह्मण की दरिद्रता छुड़ाने के लिए दरिद्रमोचनशिला आपसे आप निकल आई जो अब तक है।

(१२) दिल्ली से लौटते हुए एक ग्वाले को उपदेश देकर उन्होंने मुक्त कर दिया।

(१३) वृन्दावन में किसी ने कहा कि श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं और श्रीराम अंशावतार हैं, सो आप! श्रीकृष्ण का ध्यान क्यों नहीं करते? गोस्वामी जी ने कहा कि मेरा मन तो दशरथनन्दन के सुन्दर श्याम स्वरूप ही पर लुभा गया था। अब विदित हुआ कि वे ईश्वर के अंशावतार भी हैं। यह और भी अच्छा हुआ। वृन्दावन में उन्होंने कई चमत्कार दिखाये।

(१४) संडीले के स्वामी नन्दलाल चित्रकूट में आकर गोस्वामी

जी से मिले। गोस्वामी जी ने उन्हें अपने हाथ से रामकवच लिखकर दिया था।

(१५) मुक्तामणिदास जी नाम के एक महात्मा अवध में थे। उनके बनाये पदों पर गोस्वामी जी बहुत ही रीझे थे।

(१६) अवध से वे नैमिषारण्य आये। सूकरक्षेत्र का दर्शन किया, पसका में कुछ दिन रहे। सिवार गाँव में कुछ दिन रहे। यहाँ सीताकूप है। यह स्थान श्री सीता जी का है। कुछ दिन वे लक्ष्मणपुर (लखनऊ) में रहे। वहाँ के एक निरक्षर दीन जाट को अच्छा कवि बना दिया और अच्छी जीविका करा दी। वहाँ से थोड़ी देर मडिआउँ गाँव में भीष्म नामक एक भक्त रहते थे। उनके बनाये नखसिख को सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ उनसे मिलने के लिए आये। चनहट गाँव होते, एक कुएँ का जल पीते और उस जल की बड़ाई करते मलिहाबाद में आकर उन्होंने डेरा किया। वहाँ एक भाट भक्त थे। उनको अपनी रामयण दी।* वहाँ से वाल्मीकि जी के आश्रम से होते, रसूलाबाद के पास कोटरा गाँव में वे आये। यहाँ वे अनन्य माधव से मिले। ये बड़े भक्त और कवि थे। यहाँ गोस्वामी जी ने "मैं हरि पतितपावन सुने" यह पद बनाया। अनन्य माधवदास ने उत्तर में यह पद बनाया—

'तबतें कहाँ पतित नर रह्यो।
जबतें गुरु उपदेश दीन्यो नाम नौका गह्यो॥
लौह जैसे परसि पारस नाम कंचन लह्यो।
कस न कसि-कसि लेहु स्वामी अजन चाहन चह्यो॥

---

* कहते हैं कि रामायण की वह प्रति अब तक वर्त्तमान है। हमें भी इसके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। यह जिनके अधिकार में है वे उसकी परीक्षा नहीं करने देते। साथ ही लोग यह भी कहते हैं कि इसमें कई स्थान पर क्षेपक है। इससे इस प्रति के तुलसीदास जी-द्वारा लिखित होने में सन्देह है।

उभरि आयो विरह बानी मोल महँगी कह्यो ।
खीर नीर तें भयो न्यारो नरक तें निर्बह्यो ॥
मूल माखन हाथ आयो त्यागि सरवर मह्यो ।
अनन्य माधव दास तुलसी भव-जलधि निर्बह्यो ॥

वहाँ कुछ दिन रहकर वे ब्रह्मावर्त (बिठूर) में गंगातट पर आ रहे। वहाँ से वाल्मीकि जी के स्थान से होते संडीले में आये। रास्ते में ठहरते-ठहरते, नैमिषारण्य होते फिर वे अवध में आ गये।

(१७) संडीले में वे एक ब्राह्मण को कह आये थे कि तुम्हें बड़ा कृष्णभक्त बेटा होनेवाला है। ऐसा ही हुआ। उनके पुत्र मिश्र वंशीधर बड़े भक्त और कवि हुए।

(१८) नैमिषारण्य में एक महात्मा रहते थे। उनसे वे मिले।

(१९) मिसिरिष के पास एक जैरामपुर गाँव है। वहाँ आकर उन्होंने एक सूखी डाली गाड़ दी। वह पेड़ हो गई, उसका नाम उन्होंने वंशीवट रक्खा और आज्ञा की कि श्रीराम-विवाहोत्सव के दिन अगहन सु० ५ को यहाँ रासलीला कराया करो। वह प्रतिवर्ष अब तक होती है।

(२०) रामपुर में जकात के लिए इनकी नाव रोक दी गई थी। तब इन्होंने सब कुछ वहीं लुटा दिया। जमींदार ने जब सुना तो वह आ पैरों पर गिरा और बड़े आग्रह से उन्हें घर लाया। प्रसन्न होकर उसको उन्होंने एक प्रति रामायण की दी।

(२१) कवि गंग गोस्वामी जी से मिलने काशी आये थे।

(२२) जहाँगीर उनसे मिलने आया था और उसने बहुत कुछ देना चाहा, पर गोस्वामी जी ने कुछ ग्रहण न किया।

६—पंडित महादेवप्रसाद त्रिपाठी ने गोस्वामी जी के चरित्रवर्णन में "भक्तिविलास" नामक ग्रन्थ लिखा है। उससे जो विशेष बातें विदित हुईं वे यहाँ लिखी जाती हैं—

(१) गोस्वामी जी के माता-पिता का स्थान पत्योजा में था। गर्भस्थिति अन्तर्वेद के तरी गाँव में हुई। वहाँ से आकर राजापुर में गोस्वामी जी का जन्म हुआ।

(२) वे लोग मालवा की ओर चले, रास्ते में सूकरक्षेत्र (सोरों) में नरहरिदास से तुलसीदास जी ने रामचरित की कथा सुनी।

(३) माता-पिता ने इनका जनेऊ किया, और विद्या पढ़ाई। बचपन में नरहरिदास ने उपदेश किया। जब माँ-बाप मर गये, तो गुरु ने आज्ञा देकर इन्हें राजापुर भेजा। वहाँ इन्होंने विवाह किया। फिर स्त्री का उपदेश हुआ।

(४)* ब्रज में सूरदास से इनकी भेंट हुई।

(५) ओड़छे में केशवदास को इन्होंने प्रेतयोनि से छुड़ाया।

(६) काशी में इनकी सेवा टोडरमल करते थे।

७—महाराज रघुराजसिंह ने अपने भक्तमाल में जो चरित्र लिखा है, उसमें की विशेष बातें लिखी जाती हैं—

(१) स्त्री के उपदेश के पीछे गुरु ने सूकरक्षेत्र में रामायण का उपदेश किया।

(२) एक ब्राह्मण के लड़के को इन्होंने हनुमान् जी के द्वारा यमपुरी से लौटा मँगाया।

(३) दिल्ली में एक मतवाला हाथी इन पर टूटा, श्रीरामचन्द्र जी ने तीर से उसको मार गिराया।

(४) इन्होंने काशी में विनयपत्रिका बनाकर विश्वनाथ जी के मन्दिर में रख दी थी। विश्वनाथ जी ने उस पर सही कर दी।

---

* किसी ने तुलसीदास से सूरदास की प्रशंसा की, उस पर तुलसीदास ने कहा कि

कृष्णचन्द्र के सूर उपासी। तातें इनकी बुद्धि हुलासी।
रामचन्द्र हमरे रखवारा। तिनहिं छाँड़ि नहिं कोउ संसारा॥

(१३) अन्तकाल

जहाँगीर सन् १६०५ (संवत् १६६२) में गद्दी पर बैठा और सन् १६२७ (संवत् १६८४) में उसकी मृत्यु हुई। उसके राजत्व-काल में सन् १६१६ (संवत् १६७३) में पंजाब में महामारी (प्लेग) फैली और सन् १६१८ (संवत् १६७५) से ८ वर्ष तक आगरे में इसका प्रकोप रहा। 'तुजुकजहाँगीरी' में इसकी भीषणता का पूरा वर्णन है। आगरे में इससे १०० मनुष्य नित्य मरते थे, लोग घर-द्वार छोड़कर भाग गये थे, मुर्दों को उठानेवाला कोई न था, कोई किसी के पास नहीं जाता था।

'कवितावली' के १३७वें कवित्त में तुलसीदास जी ने लिखा है—"बीसी विश्वनाथ की विषाद बड़ी बारानसी बूझिये न ऐसी गति शंकर सहर की।" इससे यह सिद्ध होता है कि इस समय रुद्र बीसी थी। ज्योतिष की गणना के अनुसार यह समय संवत् १६६५ से १६८५ तक का है।

कवित्त १७६ में तुलसीदास जी काशी में महामारी होने का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"शंकर सहर सर, नर नारि वारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत, उतरात, हहरात, मरिजात,
भभरि भगात जल थल मीचु मई है॥
देव न दयालु, महिपाल न कृपालु चित्त,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज, रामदूत
रामहूँ की बिगरी तुही सुधारि लई है॥

इससे स्पष्ट है कि संवत् १६६५ और १६८५ के बीच काशी में महामारी का उपद्रव हुआ था। यह समय पंजाब और आगरे में इसके प्रकोप-काल से, जो ऊपर दिया है, मिलता है।

कवित्त १७७ में तुलसीदास जी लिखते हैं।

"एक तो कराल कलिकाल सूल मूल,
तामें कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गये, भूमि चोर भूप भये,
साधु सीद्यमान, जानि, रीति पाय-पीन की॥
दूबरे को दूसरो न धाम, राम दयाधाम,
रावरी भई, गति बल विभव विहीन की।
लागैंगी पै लाज वा विराजमान विरुदहिँ
महाराज, आजु जौ न देत दाद दीन की॥

इससे यह प्रकट है कि जिस समय का यह वर्णन है उस समय मीन के शनैश्चर थे। गणना के अनुसार मीन के शनैश्चर संवत् १६६९ से १६७१ में हुए थे। अतएव जान पड़ता है कि काशी में महामारी का प्रकोप उसके आगरे में फैलने के ४-५ वर्ष पहले हुआ हो। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में काशी में प्लेग फैला हुआ था।

'कवितावली' का अंतिम अंश हनुमानबाहुक है जो १८३वें कवित्त के अनन्तर आरम्भ होता है। इसके कुछ अंश हम नीचे उद्धृत करते हैं जिससे यह विदित होगा कि तुलसीदास जी को महामारी रोग हो गया था।

"जानत जहान हनुमान को नेवाज्यो जन,
मन अनुमानि बलि बोलि न बिसारिए।
सेवा जोग तुलसी कबहुँ ? कहाँ चूक परी,
साहब सुभाय कवि साहब सँभारिए॥
अपराधी जानि कीजै साँसति सहस भाँति
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीर जी के
बाँह पीर महाबीर बेग ही निवारिए॥२०॥

बात तरुमूल बाहु सूल कपि कच्छु बेलि
उपजी सकेलि कपि खेल ही उखारिए ॥२५॥

भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की
है बेदन बिषम पापताप छलछाँह की।
करमन कूट की, कि जन्त्र-मन्त्र बूट की,
पराहि जाहि पापिनी; मलीन मन माँह की ॥

पैहहि सजाय नतु कहत बजाय तोहि
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की।
आन हनुमान की, दोहाई बलवान की,
सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाँह की ॥२६॥

अपने ही पाप तें, त्रिताप तें, कि साप तें
बढ़ी है बाँह बेदन कही न सहि जाति है।
औषध अनेक जन्त्र-मन्त्र टोटकादि किये,
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है ॥

करतार, भरतार, हरतार, कर्म काल को
है जग जाल जो न मानत इताति है।
चेरो तेरो तुलसी तूँ मेरो कह्यो रामदूत
ढील तेरो बीर मोहिं पीर तें पिराति है ॥३८॥

पाँय पीर, पेट पीर, बाँह पीर, मुँह पीर,
जर जर सकल सरीर पीरमई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है ॥
हौं तो बिन मोल ही बिकानो, बलि बारे ही तें
ओट राम नाम की ललाट लिख लई है।
कुम्भज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि
हाय राम राय ! ऐसी हाल कहूँ भई है ॥३८॥

जीवौं जग जानकी जीवन के कहाय जन,
मरिबे को बारानसि बारि सुरसरि को।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक है ऐसी ठाँउ
जाके जिये मुये सोच करिहैं न लरिको।।
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब
मेरे मन मान है न हर को न हरि को।
भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत
सोऊ रघुबीर बिनु दूरि सकै करि को।।४२।।

अन्तिम कवित्त यह है—

कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों
कृपानिधान शंकर सों सावधान सुनिए।
हरष विषाद राग रोष गुन दोषमई
बिरची बिरंचि सब देखियत दुनिए।।
माया जीव काल के करम के सुभाय के
करैया राम वेद कहैं साँची मन गुनिए।
तुम्हतें कहा न होय हाहा सो बुझैए मोहि
हौं हूँ रहौं मौन ही बयो सो जानि लुनिए।।५५।।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि तुलसीदास जी की बाँह में पीड़ा प्रारम्भ हुई, फिर कोख में गिलटी निकली। धीरे-धीरे पीड़ा बढ़ती गई, ज्वर भी आने लगा, सारा शरीर पीड़ामय हो गया। अनेक उपाय किए; जंत्र, मंत्र, टोटका, औषधि, पूजा, पाठ सब कुछ किया पर किसी से कुछ न हुआ। बीमारी बढ़ती ही गई। सब तरह की प्रार्थना कर जब वे थक गये तब अन्त में यही कहकर सन्तोष करते हैं कि जो बोया है सो काटते हैं।

बीमारी के बहुत बढ़ जाने और निराश होने पर कवित्त ३५ कहा गया था।

घेरि लियो रोगनि कुलोगनि कुजोगनि ज्यों
बासर सजल घन घटा धुकि धाई है।

बरखत वारि पीर जारिए जवासे जस
रोष बिनु दोष धूम मूल मलिनाई है ॥
करुनानिधान हनुमान महा बलवान हेरि
हँसि हाँकि फूँकि फौजें तें उड़ाई है।
खायो हुतो तुलसी कुरोग राँड राकसनि
केसरी-किसोर राखे बीर बरिआई है ॥

इसके अनन्तर तुलसीदास जी अच्छे हो गये, पर शरीर बहुत शिथिल हो गया। अंत में संवत् १६८० के श्रावण मास में अंत निकट जान कर वे गंगातट पर आ पड़े। वहाँपर च्छेमकरी का दर्शन करके उन्होंने यह कवित्त कहा था जो 'कवितावली' का अन्तिम कवित्त है।

"कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचन्द सो चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चुवे अवलोकत सोच विषाद हरी है ॥
गौरो कि गंग विहंगिनि वेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेषु सप्रेम पयान समै सब सोच-विमोचन छेमकरी है ॥"

इस कवित्त में "पेषु सप्रेम पयान समै" से स्पष्ट है कि यह कवित्त मरने के कुछ ही पूर्व कहा गया था।

कहते हैं कि तुलसीदास जी का अन्तिम दोहा यह है—

"राम नाम जस बरनि कै, भयउ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अब ही तुलसी सौन ॥"

इन सब बातों पर ध्यान देने से यही सिद्धांत निकलता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु काशी में हुई। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥

पर वेणीमाधवदास तीसरा चरण इस प्रकार लिखते हैं— "श्रावण श्यामा तीज शनि।" ज्योतिष की गणना से ये तिथियाँ ठीक उतरती हैं। इस तिथि के पक्ष में एक बात विशेष महत्त्व

का है। टोडर के वंश में अब तक इस तिथि को तुलसीदास के नाम से सीधा दिया जाता है।

(१४) गोस्वामी जी के ग्रन्थ

गोस्वामी जी के बनाये १२ ग्रंथ प्रसिद्ध हैं जिनमें ६ बड़े और ६ छोटे हैं। बड़े ६ ये हैं—

१—दोहावली, २—कवित्तरामायण, ३—गीतावली, ४—रामाज्ञा, ५—विनयपत्रिका, ६—रामचरितमानस वा रामायण। छोटे ६ ये हैं—

१—रामललानहछू, २—वैराग्यसंदीपनी, ३—बरवै रामायण, ४—पार्वतीमंगल, ५—जानकीमंगल, ६—कृष्णगीतावली।

इनके अतिरिक्त नीचे लिखे १० ग्रंथों के नाम और भी "शिवसिंह-सरोज" आदि में मिलते हैं—

१-रामसतसई, २-संकटमोचन, ३-हनुमद्बाहुक ४-रामसलाका, ५—छंदावली, ६—छप्पय रामायण, ७—कडखा रामायण, ८—रोला रामायण, ९—झूलना रामायण, १०—कुंडलिया रामायण।

इनमें से कई एक तो मिलते ही नहीं और कई दूसरे ग्रंथों के अंशमात्र हैं, परन्तु एक "रामसतसई" बड़ा ग्रन्थ है। सम्भव है कि कोई कोई एक ग्रन्थ के दो नाम पड़ जाने से दो बेर गिन गये हों।

बाबा बेणीमाधवदास ने गोस्वामी के लिखित ग्रन्थों का अपने मूल चरित में उल्लेख किया है और अनेक के विषय में उसके निर्माण का संवत् भी दिया है।

(१) रामगीतावली—	संवत्	१६२८
(२) कृष्णगीतावली	,,	१६२८
(३) रामचरितमानस	,,	१६३१
(४) कवितावली	,,	१६२८-१६३१

(५) विनयपत्रिका	संवत्	१६३६-१६३९
(६) दोहावली	,,	१६४०
(७) सतसई	,,	१६४२
(८) रामललानहछू	,,	१६४३
(९) जानकीमङ्गल	,,	१६४३
(१०) पार्वतीमङ्गल	,,	१६४३
(११) बरवै रामायण	,,	१६६९
(१२) हनुमानबाहुक	,,	१६६९-१६७१
(१३) वैराग्यसंदीपनी	,,	१६७२
(१४) रामाज्ञा	,,	१६७२

अब हम तुलसीदास जी के इन ग्रन्थों का वर्णन करते हैं—

(१) गीतावली—यह ग्रंथ राग-रागिनियों में बना है। इसे कवि ने क्रम से बनाया है। लीला-क्रमानुसार और सब छन्द एक दूसरे से मिलते हुए हैं। इस ग्रंथ में कवि ने व्रज के कवियों और कृष्ण लीला का बहुत कुछ अनुकरण किया है। बाललीला, पालना, महादेवलीला, हिंडोला, होली आदि कृष्णलीला की तरह हैं। कथा-प्रसंग प्रायः रामायण से मिलता हुआ है। यह रामायण अत्यन्त माधुर्यमय है और मधुर लीलाओं ही का इसमें विशेष वर्णन भी किया गया है। इसमें भी सात कांड हैं।

(२) कृष्णगीतावली—इस ग्रंथ में श्रीकृष्णचरित वर्णित है। सब ६१ पद हैं। व्रज के कवियों की-सी कविता है। कदाचित् यह ग्रन्थ व्रज में ही बनाया भी गया हो। कृष्णलीला पूरी-पूरी नहीं है, इच्छा के अनुसार किसी-किसी लीला का वर्णन किया गया है। पहले बाल-चरित्र है, फिर यथाक्रम गोपी-उलाहना, ऊखल से बँधना, इन्द्रकोप, गोवर्धन-धारण, छाकलीला, शोभा-वर्णन, गोपिका-प्रीति, मथुरागमन, गोपिका-विलाप, उद्धवगोपीसंवाद, भ्रमरगीत और अन्त में द्रौपदी के वस्त्र बढ़ाने की कथा है।

यह ग्रंथ, ग्रंथ के क्रम से बना नहीं जान पड़ता; समय-समय पर कृष्ण-चरित की जो कवितायें बनी हैं, उन्हीं का यह संग्रह है।

(३) रामचरितमानस वा रामायण—इस अद्भुत ग्रन्थ को गोस्वामी जी ने संवत् १६३१ चैत्र शुक्ल ६ (रामनवमी) मंगलवार को आरम्भ किया—

संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

× × × ×

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

यह गोस्वामी जी का सर्वोत्तम ग्रन्थ है और इसे बनाने का उन्होंने छोटी ही अवस्था में संकल्प किया था। वे स्वयं लिखते हैं—

जागबलिक जो कथा सोहाई। भरद्वाज मुनिवरहि सुनाई॥

× × × ×

शंभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहिं सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुंडहिं दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

× × × ×

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर-खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

× × × ×

तदपि कही गुरु बारहि बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा॥

उसी समय यह विचार किया—

भाषा बद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥

इससे जान पड़ता है कि इस कथा को लिखने की इच्छा गोस्वामी जी को बचपन ही से थी। नीचे लिखे दोहों से जान पड़ता है कि या तो इसको उन्होंने छोटी ही अवस्था में बनाया था अथवा अपनी नम्रता दिखाने के लिए उन्होंने ऐसा कहा है—

संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा, राम चरन-रति देहु॥
कवि कोविद रघुबर चरित, मानस मंजु मराल।
बाल बिनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल॥

ग्रन्थ से यह पता नहीं लगता कि इस ग्रन्थ को गोस्वामी जी ने कब और कहाँ पूरा किया, क्योंकि अन्त में समय और स्थान नहीं लिखा है, केवल महिमा लिखकर उसे समाप्त कर दिया है। पर बाबा वेणीमाधवदास ने लिखा है कि दो वर्ष, सात मास और २६ दिन में यह ग्रन्थ संवत् १६३३ के मगसिर मास शुक्लपक्ष पंचमी मंगलवार को समाप्त हुआ। अनुमान से लोग यह कहते हैं कि गोस्वामी जी ने इसे अरण्यकाण्ड तक अयोध्या में और किष्किन्धा से उत्तर तक काशी में बनाया, क्योंकि और कहीं काशी का वर्णन न करके किष्किन्धाकाण्ड के मंगलाचरण में लिखा है—

मुक्ति जनम महि जानि, ग्यान खानि अघहानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न॥

इस ग्रन्थ का नाम गोस्वामी जी ने रामचरितमानस रक्खा परन्तु लोकप्रसिद्ध नाम हुआ रामायण। यों ही इसके सात भाग करके गोस्वामी जी ने उन भागों का नाम सोपान अर्थात् सीढ़ी रक्खा, परन्तु लोकप्रसिद्ध नाम हुआ काण्ड। इस प्रकार से इसके अग्रलिखित सात काण्ड हुए।

१—बालकाण्ड, २—अयोध्याकाण्ड,* ३—अरण्यकाण्ड, ४—किष्किन्धाकाण्ड, ५—सुन्दरकाण्ड, ६—लंकाकाण्ड, ७—उत्तरकाण्ड। इन सातों काण्डों में यथाक्रम यह कथा है—

(१) बालकाण्ड—मंगलाचरण, ग्रन्थरचना का कारण, नाम-

* तुलसीदास को अयोध्या नाम रुचिकर नहीं था उन्होंने सर्वत्र अवध ही लिखा है। रामायण भर में कदाचित् दो ही एक जगह अयोध्या नाम आया हो।

माहात्म्य, ग्रन्थरचना-समय, सप्तसोपान का रूपक, कथा-संक्षेप, भरद्वाज-याज्ञावल्क्य-संवाद, सती-शिवसंवाद और संशय, दक्ष-यज्ञ, सती-शरीर-त्याग, पार्वती-जन्म, पार्वती महादेव विवाह, पार्वती का रामचरित-विषयक प्रश्न, शिव जी का काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद में वर्णित रामचरित्र-वर्णन, रावण-जन्म-कारण, नारद-शाप, कर्दम-देवहूति-वर, प्रतापभानु राजा की कथा, रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण का जन्म, रावण-तपस्या और वर-प्राप्ति, मेघनाद-जन्म, रावण का अत्याचार, पृथ्वी की पुकार, देवतों का भगवान् के यहाँ जाकर पुकार करना तथा भगवान् का अवतार लेने की प्रतिज्ञा, राम-जन्म, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म, बाल-लीला और संस्कार, विश्वामित्र का राम-लक्ष्मण को माँगना, राम लक्ष्मण का मुनि के साथ जाना और अहिल्या-उद्धार, ताड़कावध, यज्ञरक्षा, जनकपुरगमन, फुलवारी, धनुषयज्ञ, परशुराम-संवाद, विवाह, विदाई, अयोध्या में आना और मङ्गलाचार होना, फलस्तुति।

(२) अयोध्याकाण्ड—मंगलाचरण, रामचन्द्र जी को युवराज पद देने का दशरथ का विचार, मन्थरा का कैकेयी को बहकाना, कैकेयी का कोप-भवन में जाना, राम-जानकी-लक्ष्मण-वनगमन, निषादमिलाप, ग्राम-वासियों और वन-वासियों का प्रेम, सुमन्त्र का लौटना, केवट का पाँव पखारना और पार उतारना, प्रयाग पहुँचना, भरद्वाज मुनि से भेंट, ग्रामवासी नर-नारियों का सरल प्रेम, वाल्मीकि के आश्रम में आना, चित्रकूट-निवास, सुमन्त्र का अयोध्या लौटना, दशरथ-प्राण-त्याग, भरत का ननिहाल से बुलाया जाना, भरत-विलाप, कैकेयी को धिक्कारना, दशरथ की क्रिया करना, भरत का वन में रामचन्द्र जी के पास जाना, भरत-मनावन, जनक का चित्रकूट पहुँचना, रामचन्द्र जी का सबको

समझा कर लौटा ना, भरत का रामचन्द्र जी की खड़ाऊँ को रख कर राज्य का प्रबन्ध करना और आप तापस के वेष में रहना, फलस्तुति।

इस काण्ड को तुलसीदास जी ने बड़े मनोयोग से बनाया है। इसमें से यदि तापस की कथा निकाल ली जाय तो सर्वत्र ८ चौपाई पर एक दोहा और २५ दोहे पर एक छन्द और १ सोरठा यह क्रम है। तापस की कथा के लिए अयोध्याकाण्ड का ११०-१११ वाँ दोहा देखिए।

(३) अरण्यकाण्ड—मङ्गलाचरण, कौवे का जानकी जी के चरण में चोंच मारना, चित्रकूट से रामचन्द्र जी का चलना, अत्रि ऋषि से भेंट अनसूया-सीता-संवाद, शरभंग ऋषि से भेंट और ऋषि का शरीर-त्याग, सुतीक्ष्ण-मिलाप, अगस्त्य-ऋषि-मिलाप, दंडक-वनवास, लक्ष्मण को रामचन्द्र जी का भक्ति-ज्ञानादिक का उपदेश, शूर्पणखा की नाक काटना, खर-दूषण की लड़ाई, शूर्पणखा का रावण के यहाँ पुकार करना, रामचन्द्र जी का सीता को अग्नि को सौंपना, रावण-मारीच-मंत्रणा, कनकमृग, सीताहरण, जटायु-रावण युद्ध, सीता को अशोक-वाटिका में रखना, रामचन्द्र जी का विलाप और जानकी को ढूँढ़ना, जटायु से भेंट और जटायु का मरना, शवरीमंगल, पम्पापुर पर रामचन्द्र जी का विश्राम, नारद-आगमन, नारद-रामचन्द्र-संवाद, फलस्तुप्ति

बहुतों के मत से इस काण्ड के आठवें सोरठे पर अयोध्या-काण्ड की समाप्ति है।

(४) किष्किन्धाकाण्ड--मंगलाचरण, काशी की वन्दना, वानरों के राजा सुग्रीव से श्री रामचन्द्र जी की ऋष्यमूक पर्वत पर भेंट होना और मैत्री करना, बालिवध, वर्षा-वर्णन, सुग्रीव का सीता की खोज में वानरों को भेजना, ढँढ़ते-ढँढ़ते वानरों का एक तप-

स्विनी की सहायता से सम्पाति के पास पहुँचना, सम्पाति का सीता का पता बतलाना, वानरों का समुद्र के किनारे आना, फलस्तुति।

(५) सुन्दरकाण्ड—हनुमान् जी का समुद्र लाँघ कर लंका में जाना, सुरसा से हनुमान् जी की भेंट, लंका-शोभावर्णन, हनुमान्-विभीषण-मिलाप, अशोक-वाटिका में छिपकर सीता-दर्शन, रावण का जानकी को भय दिखलाना, त्रिजटा का सीता को ढाढ़स देना, हनुमान् का प्रकट होकर सीता को मुद्रिका देना, हनुमान्-सीता-संवाद, हनुमान् जी का वाटिका विध्वंस करना, रावण के लड़कों से हनुमान्जी की लड़ाई और अक्षयकुमार का मारा जाना, मेघनाद का हनुमान् जी को पकड़कर रावण के सामने लाना, हनुमान्-रावण-संवाद, हनुमान् जी की पूँछ में कपड़ा लपेट कर आग लगा देना, हनुमान् जी का लंका जला कर सीताजी से बिदा माँगना, सीता जी का श्री रघुनाथ से अपना दुःख कहलाना, हनुमान् जी का रामचन्द्र जी के पास आकर सीता का सन्देसा कहना, श्री रामचन्द्र जी का वानरों की सेना के साथ लंका के लिए यात्रा करना, मन्दोदरी का रावण को समझाना कि सीता को फेर दो, रावण का हठ, विभीषण का समझाना, रावण का न मानना, विभीषण का श्री रामचन्द्र जी के पास आना, रामचन्द्र जी का विभीषण को शरण में रखना, रामचन्द्र जी का समुद्र-किनारे आना, रावण के दूत का छिपकर आना, वानरों का दूत को सताना, लक्ष्मण जी का छुड़वा देना, दूत का जाकर रावण से रामगुण बखानना, मंत्री का रावण को समझाना, रावण का अनादर करना, मंत्री का रामचन्द्र जी के पास आना, समुद्र पर रामचन्द्र जी का क्रोध करना, समुद्र का आकर बिनती करना और पुल बाँधने का उपाय बतलाना, फलस्तुति।

इस काण्ड को लोग शुभफलद कहते हैं, मन-कामना सिद्ध होने के लिए लोग प्रतिदिन इसका पाठ करते हैं।

(६) लंकाकाण्ड—मंगलाचरण, नल-नील का पुल बाँधना, रामचन्द्र जी का शिवलिंगस्थापन करना, समुद्रपार उतर कर डेरा डालना, मन्दोदरी का रावण को फिर समझाना, मन्त्रियों का समझाना, सुबेल पहाड़ पर लेटे हुए श्री रामचन्द्र जी का चन्द्रमा को देखकर शोभा वर्णन करना, मन्दोदरी का फिर रावण को समझाना, रावण का न मानना, अंगद-संवाद, मन्दोदरी का फिर समझाना, युद्धारंभ, घोर युद्ध, माल्यवान का रावण को समझाना, युद्ध, लक्ष्मण-मेघनादयुद्ध, लक्ष्मण-शक्ति, हनुमान् का औषध लाने को जाना, भरत-हनुमान्-संवाद, राम-विलाप, लक्ष्मण का अच्छा होना, कुम्भकर्ण-रावण-संवाद, कुम्भकर्ण-युद्ध, कुम्भकर्ण का मारा जाना, मेघनाद-युद्ध, मेघनाद-वध, रावण-युद्ध, रावण-यज्ञ-विध्वंस, घोर युद्ध, त्रिजटा-सीता-संवाद, युद्ध, रावण की मृत्यु, मन्दोदरी-विलाप, रावण को दाहक्रिया, विभीषण का राज्याभिषेक, हनुमान् का सीता को लाना, सीता की अग्नि-परीक्षा; देवतों की स्तुति, पुष्पक विमान पर चढ़कर रामचन्द्र का अवध को यात्रा करना, फलस्तुति।

इसमें युद्धवर्णन रोचक नहीं है। भक्तिपक्ष का अवलंबन करने से रावण के उत्कर्ष को कम कर देने के कारण युद्ध-वर्णन फीका हो गया है।

(७) उत्तरकाण्ड—मंगलाचरण, भरत-विलाप, हनुमान् का संवाद देना रामचन्द्र जी को लेने के लिए धूमधाम से भरत का आगे से जाना, भरत-मिलाप, अयोध्याप्रवेश, रामराज्याभिषेक, वेदस्तुति, वानरों की बिदाई, राम-राज्य-वर्णन, सनक-सनन्दन संवाद, भरत के प्रश्न पर रामचन्द्र जी का उपदेश, भक्ति-महिमा-कथन, वसिष्ठ-कृत-स्तुति, शिव जी का काकभुशुण्डि और गरुड़ की कथा तथा रामचरित्र-वर्णन का वृत्तान्त पार्वती को सुनाना, संक्षिप्त रामचरित-वर्णन, भक्ति-ज्ञानवर्णन, रामायण-महात्म्य, फलस्तुति।

तुलसीदास जी के हाथ की लिखी रामायण की प्रतियाँ जो प्राप्य हैं ये हैं—

(१) राजापुर का अयोध्याकाण्ड।

(२) अयोध्या का बालकाण्ड।

(३) दुलही का सुन्दरकाण्ड।

पर प्रमाणिक लिपि उनके टोडर के पुत्रों के पंचनामे तथा वाल्मीकीय रामायण की है—रामायण की प्रतिलिपि करना उन्होंने पुरी में आरंभ किया था और संवत् १६४१ में उसे काशी में समाप्त किया था। इसका उत्तरकाण्ड अभी तक काशी के 'सरस्वती-भवन' में रक्षित है। ऐसा जान पड़ता है कि गोस्वामी जी के साथ एक लेखक था जो उनके ग्रन्थों की नकल किया करता था। उसी के लिखे अयोध्या, बाल और सुन्दरकाण्ड हैं।

(४)—कवित्तरामायण वा कवितावली—यह ग्रंथ कवित्त, घनाक्षरी, सवैया और छप्पय छन्दों में है। इसकी भी वही दशा है जो बरवा रामायण आदि की है। यह भी एक समय में नहीं बना। चाहे गोस्वामी जी ने आप इसको संग्रह किय हो या उनके पीछे किसी दूसरे ने किया हो। इसके कवित्त बहुधा समस्यापूर्ति की भाँति हैं। इसमें भी सात काण्ड हैं; यथा—

१—बालकाण्ड—२ कवित्त—श्रीरामचन्द्र जी की बाललीला से धनुर्भङ्ग तक।

२—अयोध्याकाण्ड—२८ कवित्त—वनवास।

३—अरण्यकाण्ड—१ कवित्त—हरिण के पीछे श्रीरामचन्द्र जी का जाना।

४—किष्किन्धाकाण्ड—१ कवित्त—हनुमान्‌जी का समुद्र लाँघना।

५—सुन्दरकाण्ड—३२ कवित्त—लंका में हनुमान्‌जी की वीरता तथा लंकादहन, सीता जी की सुधि लेकर हनुमान जी का श्रीरामचन्द्र जी के पास लौट आना।

६—लंकाकाण्ड—५८ कवित्त—सेतुबंध, अंगदसंवाद, युद्ध, लक्ष्मण की शक्ति, रावणवध।

७—उत्तरकाण्ड—१८३ कवित्त—पहले श्रीरामचन्द्र जी की वन्दना, फिर हनुमान्-वन्दना, गोपी-उद्धवसंवाद, प्रह्लाद-कथा, महादेवस्तुति, काशी-स्तुति, काशी की दुर्गति, निज दशा तथा हनुमान्वाहुक आदि फुटकर कवितायें। अन्त में ४४ कवित्त हनुमान्बाहुक में हैं। इसका वर्णन आगे होगा।

हनुमान्बाहुक में प्रायः ऐसे कवित्त हैं जिनका देश-दशा तथा गोस्वामी जी की जीवनी से कुछ संबंध है।

(१) उत्तरकांड के ५७ कवित्त से जान पड़ता है कि माता-पिता बचपन ही में मर गये थे या उन्होंने इन्हें छोड़ दिया था। (मातु-पिता जग जाय तज्यो विधिहू न लिख्यो कुछ भाल भलाई) इसका प्रमाण रामायण में भी मिलता है कि ये बचपन ही से गुरु के साथ घूमते रहते थे।

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर-खेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तव अति रहेउँ अचेत॥

(२) ६१ घनाक्षरी से जान पड़ता है कि पहले इनका कुछ मान नहीं था, पीछे से पंचों में बड़ा मान हुआ—(छार ते सँवार कै पहार हू तें भारी कियो, गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइ कै। हौं तो जैसो तब तैसो अब अधमाई कै कै पेट भरों राम रावरोई गुन गाइकै।) इसी भाव के और भी बहुतेरे कवित्त हैं।

(३) ७२, ७३ कवित्त में स्पष्ट लिखा है कि मेरा जन्म मंगन के घर में हुआ और सभी जाति के टुकड़े खाकर मैं पला, पर रामनाममाहात्म्य से मेरा मान मुनियों का-सा है—

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागी बस
खाए टुक सबके विदित बात दूनी सो।

... ...

राम नाम को प्रभाउ, पाउँ महिमा प्रताप
तुलसी को जग मनियत महामुनीसो ॥

... ...

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन
जानति हौं चारि फल चारि ही चनक को ॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है
सुनत सिहात सोच बिधि हू गनक को।
नाम राम रावरो सयानो कैधों बावरो
जो करत गिरि तें गरु तृन तें तनक को ॥

(४) अनेक कवित्तों में कलिकाल की करालता, अकाल का कोप और राजा का अन्याय वर्णन किया गया है। ६७ कवित्त में देश-दशा का पूरा वर्णन किया है—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका-विहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहैं एक एकनि सों कहाँ जाई का करी ॥
वेद हूँ पुरान कही लोक हूँ बिलोकियत
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी।
दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबन्धु
दुरित दहन देखि तुलसी हहा करी ॥

(५) १०२ कवित्त में कलियुग का प्रभाव अपने ऊपर न व्यापने की बात लिखी है—

भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत नितै हौं।

(६) १०६, १०७, १०८ कवित्तों में उन्होंने लिखा है कि जाति-पाँति कुछ नहीं है, केवल राम का भरोसा है; कोई हमें साधु कहता है, कोई दगाबाज, सो जिसके मन में जो आवे, कहे। हमें किसी से कुछ काम नहीं—

धूत कहौ अवधूत कहौ रजपूत कहौ जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को है एक न दैबो को दोऊ॥

(७) १२७ से १३० तक प्रह्लाद-चरित्र है। १२८ में लिखा है कि प्रह्लाद जी के कहने पर खम्भ फाड़ के भगवान् निकले तभी से लोग पत्थर-प्रतिमा की पूजा करने लगे।

प्रीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे॥

(८) १३० और १३१ "होइ भले को भलाई भलाई" और १३२ "गुमान गोविन्दहिं भावत नाहीं" इन समस्याओं की पूर्ति है।

(९) १३५ से—उद्धव-गोपी-संवाद।

(१०) १३८ से १४२ तक चित्रकूट-वर्णन है, जिसमें सीताघाट, रामवट और हनुमानधारा का वर्णन किया है। श्री वाल्मीकि जी के स्थान पर अब तक सीतावट स्थित है।

(११) १४४ प्रयागराज का वर्णन।

(१२) १४५ से १४७ तक श्री गंगा जी की स्तुति है।

(१३) १४८ अन्नपूर्णा जी की स्तुति।

(१४) १४९ से १६४ तक छप्पय, कवित्त और सवैया श्री शिव जी की वन्दना में।

(१४) १६५ कवित्त में स्पष्ट लिखा है कि मैं काशी में पड़ा हूँ। श्री गंगा जी का सेवन करता हूँ, माँगकर पेट भरता हूँ, भलाई तो भाग्य में लिखी ही नहीं है, पर बुराई भी किसी की नहीं करता। इतने पर भी लोग बुराई करते हैं, सो आपके दर्बार में अर्ज़ करके छुट्टी पाता हूँ कि जो पीछे से आपको उलाहना मिले तो मुझे उलाहना न देना।

देवसरि सेवैं वामदेव गाँउ रावरे ही
नाम राम ही को माँगि उदर भरत हौं।
दीवे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक
लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं॥
एतेहू पर हू जोकोऊ रावरो ह्वै जोर करै
ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइके उराहनो उराहनो न दीजै मोहि
कालकला कासीनाथ कहे निबरत हौं॥

बैजनाथदास ने लिखा है—पंडितों के उपद्रव से काशी छोड़ने के समय गोस्वामी जी यह कवित्त विश्वनाथ जी के मंदिर में लिखकर चित्रकूट चले गये। पीछे विश्वनाथ जी का कोप हुआ, तब सब जाकर उन्हें फिर बुला लाये।

(१६) १६६ और १६७ में कहा है कि मैं रामचन्द्र जी का सेवक हूँ और काशीवास की इच्छा से यहाँ आ पड़ा हूँ, पर कुपीर से बड़ा दुखी हूँ; सो या तो मार डालिए कि काशीवास का फल हो या जिलाइए तो नीरोग शरीर रहे।

चेरो रामराय को सुसज सुन तेरो हर
पाइतर आइ रह्यो सुरसरि तीर हौं।
वामदेव राम को सुभाव सील जानि जिय
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं॥

अबिभूत बेदन बिषम होत भूतनाथ
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं।
मारिये तो अनायास कासीवास खास फल
ज्याइयै तो कृपा करि निरुज सरीर हौं॥
जीबे की न लालसा दयालु महादेव मोहि
मालुम है तोहि मरिबेई को रहतु हौं।
कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु
अवलम्ब जगदम्ब सहित चहतु हौं॥
रोग भयो भूत सो कुसूत भयो तुलसी को
भूतनाथ पाहि पद पंकज गहतु हौं।
ज्याइयै तो जानकी-रवन जन जानि जिय
मारिये तो माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं॥

(१७) १६६-१७४—काशी की दुर्गति पर विश्वनाथ जी, भगवती काली, भैरवनाथ आदि की स्तुति की है। यह समय संवत् १६५५ से १६८५ के भीतर का है, क्योंकि इस समय १७० वें कवित्त के अनुसार रुद्रबीसी थी (बीसी विश्वनाथ की विषाद बड़ो बारानसी बूझिये न ऐसी गति शंकर सहर की।) संवत् १६५५ के लगभग से काशी में मुसलमानों का विशेष उपद्रव मचा था और इसी के पीछे यहाँ महामारी (प्लेग) भी फूटी थी।

(१८) १७५-१७६—महामारी का महाकोप था। राजा से रंक तक सब दुखी थे। हनुमान् जी से प्रार्थना है कि काशीवासियों को इस विपत्त से बचाओ। इसमें स्पष्ट प्लेग का रूप वर्णन है कि लोग उछलते हैं, तड़पते हैं और मर जाते हैं, जल और थल दोनों मृत्युमय हो रहा है इस कवित्त से उस समय मुसलमानों की अनीति, बादशाह की क्रूरता और महामारी सभी उपद्रवों का होना स्पष्ट है।

(१९) १७६ कवित्त में किसी अन्यायी हाकिम को लक्ष्य करके

कहा है कि काशी में किसी की अति नहीं चलती, आज चाहे कल या परसों इसका फल पाओगे ही।

मारग मारि महीसुर मारि कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
शंकर कोप सों पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो॥
कासी में कंटक जेते भये ते गे पाइ अघाइ कै आपुनो कीयो।
आजु की कालि परौं को नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो॥

(२०) जान पड़ता है कि यह कवित्त अन्त समय में बनाया है।

कुंकुम रंग सुअंग जितो मुखचन्द सो चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चुवै अवलोकत सोच विषाद हरी है॥
गौरी कि गंग विहंगिनि वेष कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेषु सपेम पयान समै सब सोच-विमोचन छेमकरी है॥

इसके अनन्तर ३ कवित्तों में हनुमान् जी से बिनती है और तब हनुमानबाहुक का आरंभ होता है।

५—विनयपत्रिका—इस ग्रन्थ में राग-रागिनियों में गोस्वामी जी ने विनय के पद लिखे हैं। यद्यपि इसमें के बहुतेरे पद ऐसे हैं जो तुलसीदास जी ने समय-समय पर बनाये हैं तथापि इस ग्रंथ को उन्होंने ग्रंथाकार रचा। पर साथ ही कुछ अपने बनाये विनय के पदों का भी संग्रह कर दिया। इस ग्रंथ से बढ़कर दूसरे किसी ग्रन्थ में ग्रन्थकर्त्ता ने अपनी कवित्वशक्ति नहीं दिखलाई है। इसके बनने के विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है कि एक दिन एक हत्यारा पुकारता फिरता था कि 'मैं हत्यारा हूँ, कोई राम का प्यारा है जो मुझे राम के नाम पर खिलावे।" तुलसीदास जी ने उसकी पुकार और श्री रामचन्द्र जी का नाम सुनकर प्रेम के साथ उसको बुलाया और महाप्रसाद दिलाया। इस पर काशी के ब्राह्मण बहुत बिगड़े और उन्होंने इनको बुलाकर पूछा कि "आपने इसके साथ कैसे खाया और इसकी हत्या कैसे छूटी ?" गोस्वामी जी ने कहा, "आप लोग ग्रंथों में राम-नाम की महिमा देखिए। आपको उस पर विश्वास

नहीं है, यही कचाई है।" इस पर भी उन लोगों का जी नहीं भरा तब तुलसीदास जी ने पूछा. "अच्छा, आप लोगों का जी कैसे भरेगा ?" उन लोगों ने कहा कि "जो विश्वनाथ जी का नन्दी (पत्थर का) इसके हाथ से खा ले तो हम लोग मानें।" ऐसा ही किया गया और नन्दी ने उसके हाथ से खा लिया तब सब लोग लजाकर चुप हो गये। यह देखकर बहुत लोगों को विश्वास हो गया और वे भगवद्भक्ति करने लगे। इस पर कलयुग बहुत बिगड़ा और प्रत्यक्ष रूप से आकर तुलसीदास जी को धमकाने लगा। इन्होंने हनुमान् जी से फर्याद की। हनुमान् जी ने कहा, "घबराओ मत, तुम एक विनयपत्रिका स्वामी (श्री रामचन्द्र जी) की सेवा में लिखो, हम उसे पेश करके कलियुग को दंड देने की आज्ञा ले लेंगे तब ठीक होगा, क्योंकि वह इस समय का राजा है, उससे हम बिना प्रभु की आज्ञा के कुछ नहीं बोल सकते।" इसी पर तुलसीदास जी ने यह ग्रन्थ बनाया।

(१) इसमें पहले गणेश, सूर्य, शिव, भैरव, पार्वती, गंगा, यमुना, काशी के क्षेत्रपाल, चित्रकूट, हनुमान्, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता जी की वन्दना करके फिर श्री रामचन्द्र जी की विनय की है। और देवतों से यही प्रार्थना की है कि श्री रामचरण में मुझे भक्ति हो। यह ग्रन्थ विशेष करके काशी ही में बना है, क्योंकि इसमें मणिकर्णिका, पंचगंगा, बिन्दुमाधव, विश्वनाथ, काशी, दंडपाणि, भैरव, त्रिलोचन, कर्णघंटा, पंचकोश, अन्नपूर्णा और केशवदेव आदि देवतों और तीर्थों का वर्णन बहुत है। इसमें संदेह नहीं कि कुछ अंश इसका चित्रकूट और प्रयाग में भी बना है।

(२) हनुमान् जी की बंदना में जो पद हैं उनसे यह प्रकट होता है कि कहीं विपत्ति में पड़कर इनका स्मरण किया है। नीचे का पद हत्यारे और कलियुग के प्रसंग को दृढ़ करता है—

"ऐसी तोहि न बूझिये हनूमान हठीले।
साहब कहूँ न राम से तुमसे न वसीले॥
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढुक लीले।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनो गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भये बंधन ढीले।
सो बल गयो किधौं भयो अब गर्ब गहीले॥
सेवक को परदा फटै तुम समरथ सीले।
अधिक आपु तें आपुनो सुनि मान सही लें॥
साँसति तुलसीदास की देखि सुजस तुही लें।
तिहूँ काल तिनको भलो जे राम रँगीले॥"

(३) तुलसीदास जी को जिस समय दिल्ली के बादशाह ने कैद कर लिया था उस समय उन्होंने हनुमान् जी की बहुत कुछ वन्दना की थी, जिस पर कहते हैं कि हनुमान् जी ने कोप किया और बन्दरों से बादशाह के महल को उजड़वा डाला। नीचे लिखा पद उसी संबंध का जान पड़ता है—

"अति आरत अति स्वारथी अति दीन दुखारी।
इनको बिलग न मानिये बोलहिं न बिचारी॥

.. ..

बिगरी सेवक की सदा साहेबहिं सुधारी।
तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निनारी" ॥३४॥

फिर ३५वें पद में लिखा है—

"बन्दिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को तेरिए निकाई॥"

(४) ४३ वें पद में संक्षेप में रामचरित्र, देवतों की स्तुति से लेकर राज्याभिषेक तक का वर्णन किया है, ४५वें में राजा राम की वन्दना है।

(५) ४६व पद में श्रीकृष्ण की वन्दना है।

(६) ५२ वें पद में दशावतार-वर्णन है।

(७) ६१, ६ , ६२ पद में श्री बिन्दुमाधव जी की वन्दना है।

(८) ७६वें पद से गोस्वामी जी के जीवन-चरित्र से बहुत कुछ संबंध जान पड़ता है। माता-पिता का छोड़ देना और बचपन ही से गुरु के साथ घूमना, यह सब रामायण आदि से भी प्रमाणित है। इसमें भी इसी की पुष्टि होती है।

"राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम
काम यहै नाम द्वै हौं कबहूँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखैं आगे हूँ को वेद भाषैं
भलो ह्वै है तेरो तातें आनंद लहत हौं॥
बाँधों हौं करम जड़ गरभ गूढ़ निगड़
सुनत दुसह हौ तो साँसति सहत हौं।
आरत अनाथ नाथ कोसलपाल कृपाल
लीन्यो छीन दीन देख्यो दुरित दहत हौं॥
बुझ्यो ज्योंही कह्यो मैं हूँ चेरी ह्वै हो
रावरो जू मेरे कोऊ कहूँ नाहीं चरन गहत हौं।
मीजी गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि
सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥
लोग कहैं पोचु, सो न सोचु न संकोचु मेरे
ब्याह न बरेखी जात पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे
प्रीति की प्रतीत मन मुदित रहत हौं" ॥७६॥

(९) १३५वें पद में लिखा है—

"दियो सुकुल जन्म सरीर सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को॥

यह भरतखंड-समीप सुरसरि थल भलो संगति भली।
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहत निषफल फली" ॥

(१०) ब्राह्मणों को ये बहुत ही बड़ा मानते थे, १४२वें पद में लिखा है—

'विप्रद्रोह जनु बाँट परयो हठि सब सों बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति बिलास सब सन्तन्ह माँझ गनावौं' ॥

(११) यह बात प्रसिद्ध है कि मीराबाई को जब हरि-भक्ति और साधु-सत्संग के कारण राणा जी तथा और लोग दूषण देने लगे तब उन्होंने तुलसीदास जी की बड़ाई सुनकर उनको पत्र लिखकर पूछा कि हम क्या करें। उत्तर में तुलसीदास जी ने १७४ वाँ पद "जा के प्रिय न राम बैदेही। सो छाँड़िये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।" लिख भेजा था।

(१२) २२७ वें पद में भी मा-बाप के छोड़ने और बिना नाम के इधर-उधर भटकने का वर्णन किया है—

"नाम राम रावरोई हित मेरे।
स्वारथ परमारथ साथिन सों भुज उठाइ कहौं टेरे ॥
जनक जननि तज्यो जनमि करम बिनु बिधि सिरज्यो अवडेरे।
मोहूँ से कोउ कोउ कहत राम को सो प्रसंग केहि केरे ॥
फिरयो ललात बिन नाम उदर लगि दुखहु दुखित मोहि हेरे।
नाम-प्रसाद लहत रसाल फल अब हौं बबुर बहेरे ॥
साधत साधु लोक परलोकहि सुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के अवलम्ब नाम को एक गाँठ केइ फेरे" ॥२२७॥

(१३) २७५ वें पद में माता-पिता के छोड़ने पर ग्लानि होने और सन्तों के ढाढ़स देने का वर्णन किया है—

"द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ।
है दयाल दुनि दसौ दिसा दुख दोष दलन छमि कियो न संभाषन काहूँ ॥

तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ ।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ ॥
दुखित देखि सन्तन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गये रघुबर ओर निबाहूँ ॥
तुलसी तिहारो भये भयो सुखो प्रीति प्रतीति बिनाहूँ ।
नाम को महिमा सीलु नाथ को मेरो भलो बिलोकि अबतें सकुचाहुँ
सिहाहूँ ' ॥२७५॥

(१४) २७७ में "विनयपत्रिका" लिखकर पेश करने का वर्णन किया है—

' बिनयपत्रिका दीन की, बापु आपुही बाँचो ।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिए पाँचो" ॥

(१५) २७८ में हनुमान्, शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण से प्रार्थना की है कि मोका पाकर सिफारिश करके मेरा काम बना देना।

(१६) २७९ वें (अन्तिम) पद में लिखा है कि हनुमान् और भरत का रुख पाकर लक्ष्मण ने स्वामी को हमारी बिनती सुना दी। भगवान् ने हँसकर कहा—हाँ, हमें भी खबर लगी है—

' मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है
कलिकालहु नाथ नाम सों परतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है ।
कृपा गरीब-निवाज की देखत गरीब को साहब बाँह गही है ॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है ।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ को परी रघुनाथ सही है' ॥२७९॥

६—दोहावली में ५७३ दोहों का संग्रह है। दोहे भगवन्नाम-माहात्म्य, वेदान्त, राजनीति, कलियुग-दुर्दशा, धर्मोपदेश आदि स्फुट विषयों पर हैं। इनमें से डाक्टर ग्रिअर्सन की सूची के अनुसार लगभग आधे दोहे रामायण, रामाज्ञा, तुलसी-सतसई

और वैराग्यसंदीपनी में पाये जाते हैं। अन्तिम ५७३ वाँ दोहा "मनि मानिक महँगे किये ससतो तृन जल नाज। तुलसी एते जानिये राम गरीब निवाज।" खानखाना रहीम का बनाया कहा जाता है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रंथ ग्रंथ के ढंग पर नहीं लिखा गया था वरंच चाहे तुलसीदास जी ने स्वयं या उनके पीछे किसी दूसरे ने इसका संग्रह उनके ग्रंथों से तथा स्फुट दोहों को लेकर किया है।

इसके दोहों को विचार कर देखने से उस समय की स्थिति और तुलसीदास जी के मन के भाव कुछ-कुछ प्रकट होते हैं। जैसे—

असुभ भेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी ते सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥५५०॥
बादहिं सूद्र द्विजन सन, हम तुम्ह तें कुछ घाटि।
जानहिँ ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाँटि ॥५५३॥
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निन्दहिँ वेद पुरान* ॥५५४॥
स्रुति-सम्मत हरि-भक्ति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहि परिहरहिँ बिमोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक ॥५५५॥
गोंड गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल ॥५५६॥
तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमें पूछिहैं कौन ॥५६४॥
का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करै कमाँच ॥५७२॥
रामायन अनुहरत सिष, जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै, कलि कुचाल पर प्रीति ॥५४५॥

---

* यह कटाक्ष कबीर, दादू आदि पर जान पड़ता है।

७—रामसतसई में सात सौ से कुछ अधिक दोहे हैं, जिसमें से लगभग डेढ़ सौ दोहावली के हैं। मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी पंडित रामगुलाम द्विवेदी जी ने इस ग्रंथ का नाम गोस्वामी जी के १२ ग्रंथों में नहीं गिनाया है; परन्तु पण्डित शेषदत्त शर्मा उपनाम फनेश कवि ने इसे गोस्वामी जी का बतलाकर इस पर टीका की है। महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर जी ने इस पर कुंडलिया बनाकर तुलसी-सुधाकर नाम रक्खा है। पण्डित जी ने अनेक कारण दिखलाकर यह सिद्ध किया है कि यद्यपि इसमें गोस्वामी जी के बहुत-से दोहे हैं तथापि यह किसी तुलसी नामक कायस्थ कवि का बनाया ग्रंथ है। यह ग्रंथ संवत् १६४२ वैशाख सुदी ६, गुरुवार को बना था।

'अहि-रसना, थन-धेनु रस, गनपति द्विज, गुरुवार।
माधव सित सिय जनम तिथि, सतसैया अवतार॥''
(रामसतसई)

८—रामललानहछू*—यह छोटा-सा ग्रंथ बीस तुकों का सोहर छन्द में है। भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्त में—विशेषकर काशी, बिहार और तिरहुत प्रान्त में—बरात के पहले चौक बैठने के समय नाइन के नहछू करने की रीति बहुत प्रचलित है। इस ग्रंथ में वही लीला गाई गई है। इधर का खास ग्राम्य छन्द सोहर है जो कि स्त्रियाँ पुत्रोत्सव और विवाहोत्सव आदि आनन्दोत्सवों पर गाती हैं। यह ग्रंथ उसी छन्द में है और बोली भी इसकी प्रायः इस देश की ग्राम्य बोली ही के समान है; जैसे—

"जे एहि नहछू गावहिं गाइ सुनावहिँ हो।
रिद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावहिँ हो॥"

---

* बरात के पहले मंडप में वर की माँ वर को नहला-धुलाकर गोद में लेकर बैठती है और नाइन पैर के नखों को महावर के रंग से चीतती है। इसी रीति का नाम नहछू है।

पंडित रामगुलाम द्विवेदी का यह मत है कि नहछू चारों भाइय के यज्ञोपवीत के समय का है। संयुक्त-प्रदेश, मिथिला इत्यादि देशों में यज्ञोपवीत के समय भी नहछू होता है। रामचन्द्र जी का विवाह अकस्मात् जनकपुर में स्थिर हो गया, इसलिए विवाह में नहछू नहीं हुआ। इस नहछू में कोशल्या आदि की हास्यलीला लिखी हुई है।

६—जानकीमंगल—इसमें श्री सीताराम-विवाह-वर्णन है। १९२ सोहर छन्द और २४ छन्द हैं। ग्रंथ बनाने का समय नहीं दिया है, केवल "शुभ दिन रचेउँ स्वयंवर मंगलदायक" लिख दिया है। परन्तु "पार्वती-मंगल" और यह दोनों एक ही समय के बने जान पड़ते हैं, क्योंकि दोनों का एक ही ढंग, एक ही छन्द है और मंगलाचरण भी एक ही भाव का है। यथा—

पार्वतीमंगल—
बिनइ गुरहिँ गुनिगनहिँ गिरिहिँ गननाथहि।
जानकीमंगल—
गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरा पति।
पार्वतीमंगल—
गावउँ गौरि गिरीस विवाह सुहावन।
जानकीमंगल—
सिय रघुवीर विवाह जथामति गावउँ।

इस ग्रंथ में रामचरितमानस की कथा से कुछ भेद है, जो नीचे लिखा जाता है—

(१) इसमें फुलवारी-वर्णन न करके धनुष-यज्ञ ही से वर्णन आरम्भ हुआ है। सीता-राम का प्रथम परस्पर सन्दर्शन भी इसमें धनुषयज्ञ ही के समय लिखा गया है।

(२) रामायण में जनक के धिक्कारने पर लक्ष्मण का कोप और तब विश्वामित्र की आज्ञा पर रामचन्द्र का धनुष तोड़ना लिखा है। इसमें सब राजाओं के हारने पर विश्वामित्र ने जनक

से कहा है कि रामचन्द्र से कहो। इस पर जनक ने इनकी सुकुमारता देखकर सन्देह प्रकट किया तब मुनि ने इनकी महिमा कही। फिर जनक के कहने पर रामचन्द्र जी ने धनुष तोड़ा।

(३) इसका १८ वें और रामायण के ३२१ वें दोहे का छन्द एक ही है, कुछ अदल-बदल-मात्र है। ऐसे ही इसका अन्तिम २४ वाँ छन्द और रामायण बालकाण्ड का अन्तिम ३६१ वें दोहे का छन्द है जिसमें एक पद तो एक ही है।

(४) रामायण में विवाह के पहले परशुराम जी आये हैं, इसमें विवाह-बिदाई के पीछे। यही क्रम वाल्मीकि रामायण में भी है।

१०—पार्वतीमंगल—इस ग्रंथ में शिव-पार्वती का विवाह वर्णित है। इसमें १४८ तुक सोहर छन्द के हैं और १६ छन्द हैं।

इसको तुलसीदास जी ने जय संवत् फागुन सुदी ५ गुरुवार अश्विनी नक्षत्र में बनाया था। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी जी के गणनानुसार जय संवत् १६४३ में होता है।

अग्रलिखित छन्द से जान पड़ता है कि इस समय बहुत लोग तुलसीदास जी से बुरा मानते थे और इनकी निन्दा और इनसे विवाद करते थे—

"पर अपवाद विभूषित बानिहिं।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस भवानिहिं॥"

११ *बरवै रामायण—छोटे बरवा छन्द में यह ग्रंथ है।

*शिवलाल पाठक कहते थे कि तुलसीदास का बरवा रामायण भारी ग्रन्थ है। आजकल जो प्रचलित बरवा रामायण है, वह बहुत ही छोटा और छिन्न-भिन्न है। कहावत है कि जब खानखाना को उनके मुंशी की स्त्री की "प्रेम प्रीति कै बिरवा चलेहु लगाय। सींचन की सुधि ली जो मुरझि न जाय" इस कविता से बरवा अच्छा लगा, तब आपने भी इस छन्द में बहुत कविता की और इष्ट-मित्रों से भी बहुत बनवाई। उसी समय खानखाना के कहने पर तुलसीदास जी ने भी बरवा रामायण बनाई।

इसमें रामचरितमानस की भाँति सात काण्ड हैं। (१) बालकांड, १९ छन्द—रामजानकी-छबि-वर्णन, धनुष-भंग, विवाह (आभास-मात्र); (२) अयोध्याकाण्ड, ८ छन्द—कैकेयीकोप (आभासमात्र), राम-वन-गमन, निषाद-कथा, वाल्मीकिप्रसंग; (३) अरण्यकांड ६ छन्द—शूर्पणखाप्रसंग,—कंचनमृग-प्रसंग, सीता-विरह में राम अनुताप; (४) किष्किंधाकाण्ड, २ छन्द—हनुमान् का रामचन्द्र जी से पूछना कि आप कौन हैं (आभासमात्र); (५) सुन्दरकाण्ड ६ छन्द—जानकी का हनुमान् से अपना विरह कहना, हनुमान् का आकर रामचद्र जी से जानकी की दशा कहना; (६) लंकाकांड, १ छन्द—राम-लक्ष्मण की सेना-सहित युद्ध में शोभा; (७) उत्तरकाण्ड, २७ छन्द—चित्रकूटवास-महिमा, नाम-स्मरण महिमा।

बरवा रामायण से जान पड़ता है कि इसे ग्रंथ रूप में कवि ने नहीं बनाया था। समय-समय पर यथारुचि स्फुट बरवै बनाये थे, पीछे से चाहे स्वयं कवि ने अथवा और किसी ने रामचरितमानस के ढंग पर कथा का आभासमात्र लेकर कांडक्रम से उन छन्दों का संग्रह कर दिया है। इसमें और ग्रन्थों की तरह मंगलाचरण भी नहीं है। यही दशा रामचरितमानस को छोड़ प्रायः और रामायणों की भी देखने में आती है।

१२—हनुमानबाहुक—यह ग्रन्थ कवितावली का अंश है पर कुछ लोग इसे स्वतंत्र ग्रन्थ मानते हैं। इसमें ४४ कवित्त हैं जिनमें हनुमान् जी की वन्दना, काशी की बड़ाई करके उस पर भी कलियुग के जोर का वर्णन किया है। (बिरची बिरंचि की बसति विश्वनाथ की जो प्रान हूँ ते प्यारी पुरी केशव कृपाल की। जोतिरूप लिंगमई अगनित लिंगमई मोच्छ-बितरनि बिदरनि जग-जाल की॥ देवी देव देवसरि सिद्ध मुनि बरबास लोपति बिलोकति कुलिपि भोड़े भाल की। हा हा करै तुलसी दयानिधान राम ऐसी काशी की कदर्थना कराल कलिकाल की॥)

कलियुग का वर्णन करके लिखा है कि शिव जी का क्रोध तो महामारी ही से जान पड़ता है और रामचन्द्र जी का कोप दुनिया के प्रतिदिन दरिद्र होने से—(शंकर सरोष महामारिहि तें जानियत साहेब सरोष दुनी दिन दिन दारिदी।)

लोगों के बुराई करने पर हनुमान् जी से पूछते हैं कि बतलाइए, हमने कौन-सा अपराध किया है जिसमें हम आगे के लिए तो होशियार हों—(जन-सिरोमनि हौं हनुमान् सदा जन के हिय बास तिहारो। ढारो बिगारो मैं काको कहा केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो। साहेब सेवक नाते ते होतो? कियो सो तहाँ तुलसी को न चारो। दोष सुनाये ते आगेहू को हुशियार है हों मन तो हिये हारो॥)

फिर हनुमान् जी की बुढ़ौती का वर्णन करते हैं—(बूढ़े भये बलि मेरेहि बार कि हारि परे बहुते नत पाले?) आगे दुख देनेवाले खलों का दमन करने की प्रार्थना की है। तब बाँह का पीड़ा छुड़ाने के लए प्रार्थना की है।

बाँह के पीड़ारूप राहु को पछाड़कर मारने की प्रार्थना है। पहले लिखा कि हमें लड़का जानकर बचपन ही से दया की और निरुपाधि रक्खा—(बालक बिलोकि बलि बारे तें आपनो कियो दीनबन्धु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये।) बाँह की पीड़ा का वर्णन। बाँह की जड़ में दर्द होने का वर्णन। (बाहु तरु मूल बाहु सूल कपि कच्छुबेलि उपजी सकेलि कपि केलि ही उपारिये।)

बाँह का दर्द पूतना है; यह तुम्हारे ही मारे मरेगी। दर्द की भीषणता दिखाई है। बाँह की पीर को पुकार। यहाँ स्पष्ट लिखा है कि मुझे बचपन से घर घर के टुकड़े खिलाकर जिलाया और सदा मेरी सँभाल और रक्षा करते आये, पर आज क्यों यह खेल है? "बालकों का खेल और चिड़िया की मौत"। (टूकनि को घर घर डोलत कंगाल बोलि बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है। कीन्हों है सँभार सार अंजनीकुमार वीर आपनो बिसारि है न मेरे

हूँ भरोसो है ॥ इतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु कपिनाथ साँची कहो को तिलोक तोसो है। साँसति सहत दास की जै पेखि परिहास चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है ॥) बहुत कुछ दवा और टोटके किये, यन्त्र, मंत्र किये, देवी-देवता मनाये पर दर्द बढ़ता ही जाता है।

शिव जी की प्रार्थना है कि आप ही के टुकड़े से पला हूँ, चूक होने पर भी मुझे न छोड़िए। इसमें हनुमान् जी की प्रशंसा की है कि मैं मर ही चुका था, पर तुमने रख लिया। इसमें लिखा है कि फिर दर्द बढ़ा। श्री रामचन्द्र जी से प्रार्थना की है कि दर्द मिटाइए बल्कि लूला ही आपके दर्बार में पड़ा रहूँगा। (बाँह को बेदन बाँह पगार पुकारत आरत आनँद भूलो। श्री रघुबीर निवारिये पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो ॥)

३७वें कवित्त में लिखा है कि रात-दिन का दर्द सहा नहीं जाता। उसी बाँह को इसने पकड़ा है जिसको हनुमान् जी ने पकड़ा था। (काल की करालता करम कठिनाई कीधौं पाप के प्रभाव को सुभाय बाय बावरे। वेदन कुभाँति सो सही न जाति राति दिन सोई बाँह गही जो गही समीर डावरे। लायो तरु तुलसी तिहारो सो निहारि बारि सींचिए मलीन भो तयो है तिहुँ ताव रे। भूतनि की आपनी पराइ हो कृपानिधान जानियत सब ही की रीति राम रावरे ॥)

३८वें में लिखा है कि सारे शरीर में दर्द फैल गया, ज्वर बढ़ा, बुढ़ौती की निर्बलता, ग्रहों आदि का जोर और काल का जोर मुझ पर हो रहा है। फिर श्रीराम-लक्ष्मण जी से प्रार्थना।

४१वें कवित्त में लिखते हैं कि जब सब तरह से मैं धनहीन, विषयलीन था, तब आपने अपनाया। जब मान बढ़ा तब अभिमान आ गया। इसी से जान पड़ता है कि बाल-तोड़ के बहाने राम राजा का नमक रोएँ-रोएँ से फूट-फूटकर निकल रहा है।

जान पड़ता है, इस समय सारे शरीर में फोड़े या घाव हो गये थे। (असन-बसन-हीन विषम-विषाद-लीन देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को ? । तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो दियो फल सीलसिन्धु आपने सुभाय को ॥ नीच यहि बीच पति पाइ भरुजाइगो बिहाय प्रभुभजन बचन मनकाय को। तातें तन पेखियत घोर बरतोर मिस फूटि फूटि निकसत लोन राम राय को ॥)

४२वें कवित्त में अत्यंत घबरा गये हैं, तब इस कवित्त में हनुमान् जी, रामचन्द्र जी, महादेव जी और भैरव जी की वन्दना करते हैं।

४४वाँ अन्तिम कवित्त है। इसमें सब तरह थककर अन्त में कहते हैं कि अब यह समझकर कि अपने कर्मों का फल मिल रहा है, हम भी चुप हो जाते हैं।

१३—वैराग्यसंदीपनी—यह ग्रंथ दोहे-चौपाइयों में सन्त-महात्माओं के लक्षण, प्रशंसा और वैराग्य के उत्कर्ष-वर्णन में लिखा गया है। इसमें तीन प्रकाश हैं। पहला, ३२ छन्दों का संत-स्वभाव-वर्णन; दूसरा, ६ छन्दों का सन्त-महिमा-वर्णन और तीसरा, २० छंदों का शान्ति-वर्णन है। जान पड़ता है कि घर छोड़कर विरक्त होने के पीछे इसको तुलसीदास जी ने बनाया है।

१४—रामाज्ञा—इस ग्रंथ को शकुन विचारने के लिए तुलसीदास जी ने बनाया है इसमें ४९-४९ दोहों के सात अध्याय हैं। इन अध्यायों में श्री रामचरित्र के बहाने शकुन कहा है, परन्तु रामायण के क्रम से अध्याय * नहीं है। अध्याय की कथा नीचे लिखे क्रम से है।

१ अध्याय—बालकांड की कथा।

२ अध्याय—अयोध्याकांड की कथा।

---

* डाक्टर ग्रिअर्सन ने इंडियन ऐंटीक्वेरी में लिखा है—Each Adhyaya forms a sort of running commentary on the corresponding Kanda of the Ramayan.

३ अध्याय—अरण्य और किष्किंधाकांड की कथा।

४ अध्याय--फिर से बालकांड की कथा, राम-जन्म और विवाह।

५ अध्याय—सुन्दर और लंकाकांड की कथा।

६ अध्याय—उत्तरकांड की कथा और अश्वमेधयज्ञ, सीता-अग्नि-प्रवेश आदि।

७ अध्याय—स्फुट दोहे, व्यापार, संग्राम आदि विषय के प्रश्नों पर शकुन-विचार।

इस ग्रंथ को तुलसीदास जी ने शकुन विचारने ही की इच्छा से बनाया था, चाहे किसी के अनुरोध से बनाया हो या अपनी ही इच्छा से। इसके दोहों में बराबर शकुन विचारा गया है और अन्त में शकुन विचारने की विधि भी दी है। यथा—

"सुदिन साँझ पोथी नेवति पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारुमति सादर सत्य सनेम॥
मुनिगनि, दिनगनि, धातुगनि, दोहा देखि विचार।
देस, करम, करता, बचन, सगुन समय अनुहारि॥"

डाक्टर ग्रिअर्सन अपने लेख 'नोट्स ऑन तुलसीदास" (Notes on Tulsi Das) में बाबू रामदीनसिंह के कथन के आधार पर इस ग्रंथ के बनने के विषय में यह कहानी लिखते हैं कि काशी में राजघाट के राजा गहरवार क्षत्रिय थे, जिनके वंशज अब माँडा और कन्तित के राजा हैं। इनके कुमार शिकार खेलने वन में गये। उनके साथ का कोई मनुष्य बाघ से मारा गया, परन्तु राजा को समाचार मिला कि उन्हीं के राजकुमार मारे गये हैं। राजा ने घबरा कर प्रह्लादघाट पर रहनेवाले प्रसिद्ध ज्योतिषी गंगाराम को बुलाकर प्रश्न किया, साथ ही यह भी कहा कि यदि आपकी बात सच होगी तो एक लाख रुपया पारितोषिक मिलेगा, नहीं तो सिर काट लिया जायगा। गंगाराम एक दिन का समय लेकर घर आये और उदास बैठे रहे। तुलसीदास जी से और इनसे बड़ा प्रेम था। ये दोनों मित्र नित्य

संध्या को नाव पर बैठकर गंगा पार जाते और भगवदुपासना में मग्न होते थे। उस दिन भी तुलसीदास जी आये, पर गंगाराम ने उदासी के मारे जाने से अनिच्छा प्रकट की। तुलसीदास जी ने जब कारण सुना तब कहा कि घबराओ नहीं, मैं इसका उपाय कर दूंगा। निदान उपासना से छुट्टी पाकर लौट आने पर तुलसीदास जी ने लिखने की सामग्री माँगी। कागज के अतिरिक्त कलम दावात भी वहाँ नहीं मिली, तब उन्होंने एक सरई का टुकड़ा लेकर कत्थे से लिखना आरम्भ किया और छः घंटे में बिना रुके हुए लिखकर इस रामाज्ञा को पूरा कर दिया। ज्योतिषी जी ने इसके अनुसार प्रश्न करके जाना कि राजकुमार कल संध्या को घड़ी दिन रहते कुशलपूर्वक लौट आवेंगे। सवेरे जाकर उन्होंने राजा से कहा। राजा ने उन्हें संध्या तक के लिए कैद कर रक्खा। ज्योतिषी जी के बतलाये ठीक समय पर राजकुमार लौट आये और ज्योतिषी को लाख रुपये मिले। वे उस रुपये को तुलसीदास जी को भेंट करने लगे, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। बहुत आग्रह करने पर बारह हजार रुपया लेकर उन्होंने हनुमान् जी के बारह मन्दिर बनवा दिये जो अब तक हैं और जिन सभों में हनुमान् जी की मूर्ति दक्षिण मुख किये स्थापित है।

मेरी समझ में इस आख्यायिका की जड़ यह प्रथम अध्याय का उनचासवाँ दोहा है—

'सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर गोगन गंगाराम॥"

(प्रत्येक अध्याय के अन्त में एक-एक दोहा इस ढंग का दिया है) परंतु यह कथा सत्य नहीं जँचती, क्योंकि एक तो किसी दोहे में ऐसा ठीक उत्तर नहीं मिलता, दूसरे उस समय राजघाट का किला ध्वंस हो चुका था। महमूद गजनवी के सेनानायक सैयद सालार मसऊद (गाजी मियाँ) की लड़ाई में यह किला टूट चुका था। मुसलमानी

समय में यहाँ के चकलेदार मुसलमान होते थे। अन्तिम चकलेदार मीर रुस्तम अली थे जो दशाश्वमेध के पास मीरघाट पर रहते थे और जिनको, वर्तमान काशिराजवंस के संस्थापक मनसाराम ने, भगा कर यहाँ का राज्य लिया था।

इसके सैकड़ों दोहे तुलसीदास जी के दूसरे ग्रन्थों में भी मिलते हैं, विशेषकर दोहावली में। जैसे इसके सातवें अध्याय का २१ वाँ दोहा—

"राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनो ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर॥"

वैराग्यसंदीपनी और दोहावली दोनों का पहला दोहा है। ऐसे दोहों की एक सूची डाक्टर ग्रिअर्सन ने अपने ऊपर लिखे लेख में दी है।

बस, यहीं पर तुलसीदास जी के ग्रन्थों का वर्णन समाप्त होता है। इसमें संदेह नहीं कि यदि तुलसीदास जी का पूर्णरूप से वर्णन किया जाय और उनके काव्य के गुण-दोषों पर विचार किया जाय तो एक बहुत बड़ा ग्रंथ बन जाय। खेद की बात है कि हिन्दी के ऐसे बड़े कवि के जीवन-चरित्र को जानने के लिए हमें किंवदन्तियों का ही आश्रय लेना पड़ता है। जिन घटनाओं का निदर्शन स्थूल रूप से गोस्वामी जी ने अपने ग्रंथों में आप किया है उनको छोड़कर अन्य किसी घटना का कोई दृढ़ प्रमाण हमें नहीं मिलता। अतएव हमने इस निबंध के लिखने में यही सिद्धान्त रक्खा है कि जो-जो बातें तुलसीदास जी के विषय में प्रसिद्ध हैं उनका उल्लेखमात्र कर दें। उन पर अपना दृढ़ मत देने या उनकी पूरी-पूरी छानबीन करने का हमने उद्योग नहीं किया, क्योंकि इससे कोई फल नहीं निकलता। पहले सिद्ध महात्मा यों ही अद्भुत जीव होते हैं, फिर उनके भक्त अनुयायी उनकी अद्भुतता की मात्रा को इतना बढ़ा देते हैं कि सत्यासत्य का

निर्णय करना कठिन हो जाता है। सब बातों पर विचार करने पर हमारा यही सिद्धान्त है कि उनका सबसे प्रामाणिक जीवनचरित बाबा वेणीमाधवदास का लिखा है।

(१५) गोस्वामी जी का काव्य-सौन्दर्य

गोस्वामी तुलसीदास जी भक्ति के क्षेत्र में जितने महान् थे उतने ही कविता के क्षेत्र में भी थे। वस्तुतः उनकी कविता उनकी भक्ति का ही प्रतिरूप थी। उनकी भक्ति ही मानो वाणी का आवरण पहनकर कविता के रूप में व्यक्त हुई थी। उनकी कविता अपने आप अपना उद्देश्य नहीं थी। 'कवि न होउँ नहिं चतुर प्रबीना' में जहाँ उनके विनय का पता चलता है वहाँ यह भी संकेत है कि उनकी काव्य-रचना का लक्ष्य कविता करना नहीं था। जिस प्रौढ़ वय में उन्होंने कविता करना आरंभ किया था, इससे पता चलता है कि यशोलिप्सा भी उन्हें नहीं थी। उन्होंने जो कुछ कहा है वह केवल कवि चातुर्य के फेर में पड़कर नहीं, वरन् इसलिए कि अपने हृदय की अनुभूति को बिना प्रकट किये उन्हें चैन नहीं मिलता था। यही आकुलता कविता को अबाध प्रवाह देती है। प्रयत्नप्रसूत कविता वास्तविक कविता नहीं कही जा सकती। उसमें कविता का बहिरंग हो सकता है पर यह आवश्यक नहीं कि जहाँ कविता का बहिरंग दिखाई दे वहीं उसका अभ्यंतर भी मिल जाय। सच्ची सजीव कविता के लिए यह आवश्यक है कि कवि की मनोवृत्तियाँ वर्ण्य विषय के साथ एकाकार हो जायँ जब कवि की सब भावनाएँ एकमुख होकर जागरित हो उठती हैं, तब कवि का हृदय स्वतः ही भावुक उद्‌गारों के रूप में प्रगट होने लगता है। इस अभिव्यक्ति के लिए न तो कवि की ओर से प्रयत्न की आवश्यकता होती है और न कोई बाहरी रुकावट ही उसे रोक सकती है। गोस्वामी जी में इस तल्लीनता की पराकष्ठा हो गई थी। उनकी निःशेष मनो-वृत्तियाँ रामाभिमुख होकर जागरित हुई थीं। भगवान् श्रीराम

के साथ उनके मनोभावों का इतना तादात्म्य हो गया था कि जो कोई वस्तु उनके और राम के बीच व्यवधान होकर आवे उससे कदापि उनके हृदय का लगाव नहीं हो सकता था। यही कारण है कि भगवान् राम के अतिरिक्त किसी के विषय में उन्होंने अपनी वाणी का उपयोग नहीं किया।

श्रीरामकथा का आदि स्रोत 'वाल्मीकीय रामायण' है। गोस्वामी जी ने भी प्रधान आश्रय इसी ग्रंथ का लिया था। आदि रामायणकार होने के कारण इन कवीश्वर की गोस्वामी जी ने वन्दना भी की है; इन्हीं के साथ हनुमन्नाटकार कवीश्वर की भी वंदना की है, क्योंकि उन्होंने हनुमन्नाटक से भी सहायता ली है। इनके अतिरिक्त योगवाशिष्ठ, अध्यात्मरामायण, महारामायण, भुशुण्डिरामायण, याज्ञवल्क्यरामायण, भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, भरतद्वाजरामायण, प्रसन्नराघव, अनर्घ्यराघव, रघुवंश आदि सैकड़ों ग्रंथों की छाया रामचरितमानस में मिलती है।

परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि गोस्वामी जी ने रामचरितमानस लिखने के लिए इन ग्रंथों को पढ़ा था। वे भगवान् राम के अन्यतम भक्त थे, इसलिए उन्होंने राम-संबंधी सभी लभ्य साहित्य पढ़ा था। सबके विवेकोचित त्याग और सारग्रहणमय अध्ययन से राम का जो मंजुल लोक-रक्षक चरित्र उन्होंने निर्धारित किया, उसी को उन्होंने रामचरितमानस के रूप में जगत के सामने रक्खा। इसी परित्याग और ग्रहण में उनकी मौलिकता है जिसका रूप उनकी प्रबन्ध-पटुता के योग में अत्यन्त पूर्णता के साथ खिल उठता है।

जिस प्रकार गोस्वामी जी का जीवन राममय था, उसी प्रकार उनकी कविता भी राममय थी। श्रीराम-चरित्र की व्यापकता में उन्हें अपनी कला के संपूर्ण कौशल के विस्तार का सुयोग प्राप्त था। उसी में उन्होंने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया। अन्तः-

प्रकृति और बाह्य-प्रकृति दोनों से उनके हृदय का समन्वय था। इसी से उन्हें चरित्र-चित्रण और प्रकृति-चित्रण दोनों में सफलता प्राप्त हुई। परन्तु गोस्वामी जी आध्यात्मिक धर्मशील प्रकृति के मनुष्य थे। सबके संरक्षक भगवान् श्रीराम के प्रेम ने उन्हें संरक्षण के मूल शीलमय धर्म का प्रेमी बनाया था, जिसके संरक्षण में उन्हें प्रकृति भी संलग्न दिखाई देती थी। पंपासरोवर का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

फलभारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसम्पति पाइ॥
सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जल माहिँ।
जथा धर्मसीलन्हि के दिन सुख संजुत जाहिं॥

प्राकृतिक दृश्यों में शील संरक्षिका धर्मशीला नीति की रह छाया उनके काव्यों में सर्वत्र दिखाई देती है। किष्किंधाकांड के अन्तर्गत वर्षा और शरद्-ऋतु के वर्णन इसके बहुत अच्छे उदाहरण हैं। यह गोस्वामी जी का महत्त्व है कि धर्मसादृश्य, गुणोत्कर्ष आदि अलंकार-योजना के सामान्य नियमों का निर्वाह करते हुए भी वे शील और सुरुचि के प्रसार में समर्थ हुए हैं।

गोस्वामी जी का प्रकृति से परिचय केवल परम्परागत नहीं था। उन्होंने प्रकृति के परम्परागत प्रयोगों को स्वीकार किया है, परन्तु वहीं तक जहाँ तक ऐसा करना सुरुचि के प्रतिकूल नहीं पड़ता। सीता जी के वियोग में विलाप करते हुए श्री रामचन्द्र जी के इस कथन में—

खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुर निकर कोकिला प्रवीना॥
कुंदकली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं नेकु न संक सकुच मन माहीं॥

उन्होंने कविपरम्परा का ही अनुसरण किया है। ये उपमान न जाने

कब से भिन्न-भिन्न अंगों की, विशेषकर स्त्रियों के अंगों की सुन्दरता के प्रतीक समझे जाते हैं। मूल रूप में ये मनुष्य-जाति की, और विशेषकर उनके अधिक भावुक अंग अर्थात् कविसमुदाय की, निसर्ग-सौन्दर्यप्रियता के द्योतक हैं। परन्तु आगे चलकर इनका प्रयोग केवल परम्परा-निर्वाह के लिए होने लगा। परन्तु गोस्वामी जी ने परम्परा के अनुसरण से ही सन्तोष किया हो, ऐसी बात नहीं। उन्होंने अपने लिए अपने आप भी प्रकृति का पर्यवेक्षण किया था। उनके हृदय में प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित होने की क्षमता थी। उनके विशाल हृदय में जड़ और चेतन सृष्टि के दोनों अंग एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हुए उद्भावित होते हैं। उनकी दृष्टि में ग्लानिपूरित हृदय को लेकर रामचन्द्र जी को मनाकर लौटा लाने के लिए जानेवाले शीलनिधान भरत के उद्देश्य में प्रकृति की भी सहानुभूति है। इसी लिए उनके मार्ग को सुगम बनाने के लिए—

किये जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात ॥

प्रकृति की सरल सुन्दरता उनको सहज ही आकर्षित कर लेती थी। पक्षियों का कलरव, जिसमें वे परमात्मा का गुणगान सुनते थे, उन्हें आमन्त्रक प्रतीत होता था—

बोलत जल कुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥
सुंदर खगगन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई ॥

कोकिला की मधुर ध्वनि उन्हें इतनी मनोमोहक जान पड़ती थी कि उससे मुनियों का भी ध्यान भंग हो जाय।

'जड़ चेतन जीव-जन्तु' सबको राममय देखनेवाले गोस्वामी जी का हृदय यदि प्रकृति की सुंदरता के आगे उछल न पड़ता तो यह आश्चर्य की बात होती।

प्रकृतिसौंदर्य के लिए उनके हृदय में जो कोमल स्थान था उसी का प्रसाद है कि हिन्दी में स्वीकृत विवरणमात्र दे देने की परम्परा से ऊपर उठकर कहीं-कहीं उनकी प्रतिभा ने प्रकृति के पूर्ण चित्रों का

निर्माण किया है। प्राकृतिक दृश्यों के यथातथ्य चित्रण की जो क्षमता यत्र-तत्र गोस्वामी जी में दिखाई देती है वह हिंदी के और किसी कवि में देखने को नहीं मिलती।

लषन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥

इसी डेढ़ चौपाई में गोस्वामी जी ने चित्रकूट और उसके तल पर बहनेवाली मन्दाकिनी का सुन्दर तथा यथातथ्य चित्र अंकित कर दिया है और साथ ही तीर्थ का माहात्म्य भी कह दिया है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत का इतना सार्थक समन्वय गोस्वामी जी की ही कला का कौशल है।

इसी प्रकार पंपासरोवर तथा जल पीने के लिए आये हुए मृगों के झुंड का, यह चित्र भी वस्तुस्थिति को ठीक-ठीक आँखों के सामने खींच देता है—

जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

मनुष्य भी प्रकृति का ही एक अंग है। उसकी बाहरी चालढाल, मुद्रा, आकार आदि का वर्णन भी वाह्य प्रकृति के वर्णन के ही अन्तर्गत समझना चाहिए। गोस्वामी जी ने इनके चित्रण में भी अपना कौशल दिखलाया है। मृगया करते हुए श्री रामचन्द्र की मूर्ति उनके हृदय में विशेष रूप से बसी हुई थी। उस मूर्ति का चित्र खींचते हुए उन्होंने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया है; जटा मुकुट सिर सारस नयननि गौहें तकत सुभौंह सकोरे। और भी—

सोहति मधुर मनोहर मूरति हेमहरिन के पाछें।
धावनि नवनि बिलोकनि वियकनि बसै तुलसी उर आछें ॥

मृग के पीछे दौड़ते हुए, बाण छोड़ने के लिए झुकते हुए, मृग के भाग जाने पर दूर तक दृष्टि डालते हुए और हारकर परिश्रम जनाते हुए राम का कैसा सजीव चलचित्र आँखों के सामने आ जाता है!

बाह्य प्रकृति से भी अधिक गोस्वामी जी की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि अन्तः-प्रकृति पर पड़ी थी। मनुष्य-स्वभाव से उनका सर्वांगीण परिचय था। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पड़कर मन की क्या दशा होती है, इसको वे भली भाँति जानते थे। इसी से उनका चरित्र-चित्रण बहुत पूर्ण और दोष-रहित हुआ। रामचरितमानस में प्रायः सभी प्रकार के पात्रों के चरित्र-अंकन में उन्होंने अपनी सिद्धहस्तता दिखाई है। दूसरे के उत्कर्ष को अकारण ही न देख सकनेवाले दुर्जन किस प्रकार किसी दूसरे व्यक्ति को अपने पक्ष में करने के लिए पहले स्वयं स्वार्थत्यागी बनकर अपने को उनका हितैषी जताकर उनके हृदय में अपने भावों को भरते हैं, इसका मन्थरा के चरित्र में हमें अच्छा दिग्दर्शन मिलता है। दुर्जनों की जितनी चालें होती हैं उन्हीं के दिग्दर्शन के लिए मानों सरस्वती मंथरा की जिह्वा पर बैठी थी।

जिस पात्र को जो स्वभाव देना उन्हें अभीष्ट था उसे उन्होंने कोमल वय में बीजरूप में दिखलाकर, आगे बढ़ते हुए भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उनका नैसर्गिक विकास दिखाया है। श्री रामचन्द्र जी के जिस स्वार्थत्याग को हम बाहुबल से जीते हुए लंका के समृद्ध राज्य को बिना हिचक विभीषण को सौंप देने में देखते हैं वह सहसा आई हुई उमंग का परिणाम नहीं है, वह श्री रामचन्द्र का बाल्यकाल ही से क्रमपूर्वक विकास पाता हुआ स्वभाव ही है। उसे हम चौगान के खेल में छोटे भाइयों से जीतकर भी हार मानते हुए बालक राम में, अन्य पुत्रों की उपेक्षा कर जेठे पुत्र को ही राज्याधिकारी माननेवाली प्रथा को अन्याययुक्त विचार करते हुए युवा राम में, और फिर प्रसन्नता से राज्य छोड़कर ऋषि मुनियों की भाँति तपोमय जीवन बिताते हुए वनवासी राम में देखते हैं।

रामचरितमानस में रावण का जितना चरित्र हमारी दृष्टि में पड़ता है उसमें आदि से अन्त तक उसकी एक विशेषता हमें दिखाई देती है। वह है घोर भौतिकता। कदाचित् आत्मा की उपेक्षा करते

हुए भौतिक शक्ति का अर्जन ही गोस्वामी जी राक्षसत्व समझते थे। उसका अपार बल, विश्वविश्रुत वैभव, उसकी धर्महीन शासनप्रणाली जिसमें ऋषि-मुनियों तक से कर लिया जाता था, उसके राज्य भर में धार्मिक अभिरुचि का अभाव और धार्मिक उत्पीड़न, ये सब उसके भौतिक वाद के द्योतक हैं। प्रश्न उठता है कि वह बड़ा तपस्वी भी तो था? किन्तु उसके तप से भी उसकी भौतिकता का ही परिचय मिलता है। वह तप उसने अपनी आध्यात्मिक उन्नति या मुक्ति के उद्देश्य से नहीं किया था, वरन् इस कामना से कि भौतिक सुख को भोगने के लिए वह इस शरीर से अमर हो जाय।

हनुमान् जी में गोस्वामी जी ने सेवक का आदर्श खड़ा किया है। वे भगवान् राम के सेवक हैं। गाढ़े समय पर जब सबका धैर्य और शक्ति जवाब दे जाती है तब हनुमान् जी ही से राम का काम सधता है। समुद्र को लाँघकर सीता की खबर वे ही लाये। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर द्रोणाचल पर्वत को उखाड़ ले आकर उन्होंने संजीवनी बूटी प्रस्तुत की। भक्त के हृदय में बसने की राम की प्रतिज्ञा जब व्यवधान में पड़ी तब उन्होंने अपना हृदय चीरकर उसकी सत्यता सिद्ध की। परन्तु हनुमान् जी के चरित्र में एक बात से कुछ असमंजस हो सकता है। वे सुग्रीव के सेवक थे। सुग्रीव से बढ़कर राम की भक्ति करके क्या उन्होंने सेवा-धर्म का व्यतिक्रम नहीं किया? नहीं, लंकाविजय तक वास्तव में उन्होंने सुग्रीव की सेवा कभी नहीं छोड़ी तथा और लोगों से कुछ दिन बाद तक जो वे अयोध्या में श्रीराम की सेवा करते रहे वह भी सुग्रीव की आज्ञा से—

दिन दसि करि रघुपति-पद-सेवा। पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥
पुन्यपुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा-आगारा॥

इसी प्रकार भरत के हृदय की सरलता, निर्मलता, निःस्पृहता

और धर्म-प्रवणता उनकी सब बातों से प्रकट होती है। राम खुशी से उनके लिए राज्य छोड़ गये हैं, कुल-गुरु वशिष्ठ उनको सिंहासन पर बैठने की अनुमति देते हैं, कौशल्या अनुरोध करती हैं, प्रजा प्रार्थना करती है; परन्तु सिंहासनासीन होना तो दूर रहा, वे इसी बात से क्षुब्ध हैं कि लोग कैकेयी के कुचक्र में उनका हाथ न देखें वे माता से उसकी कुटिलता के लिए रुष्ट हैं। परन्तु साथ ही वे अपने को माता से अच्छा भी नहीं समझते, इसी में उनके हृदय की स्वच्छता है। जब माता ही बुरी है तो पुत्र कैसे अच्छा हो सकता है!

मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥

सिंहासन स्वीकार करने के लिए आग्रह करनेवाले लोगों से उन्होंने कहा था—

कैकेयी सुअ कुटिलमति, राम-बिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह बस, मोहि से अधम के राज॥

भरत के संबंध में चाहे यह न घटती और वे प्रजा का पालन बड़े प्रेम से करते, जैसा उन्होंने किया भी; परन्तु उनका राज्य स्वीकार करना महत्त्वाकांक्षी राजकुमारों और द्वेषपूर्ण सौतों के लिए एक बुरा मार्ग खोल देता, जिससे प्रत्येक अभिषेक के समय किसी न किसी कांड की आशंका बनी रहती। इसी बात को दृष्टि में रखकर संम्भवतः उन्होंने कहा था—

मोहिं राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

भरत की लोक-मर्यादा की, जिसका ही दूसरा नाम धर्म है, रक्षा की इस चिन्ता ने ही राम को भरत भूमि रह राउरि राखी' कहने के लिए प्रेरित किया था। उमड़ते हुए हृदय और वाष्प-गद्गद कंठ से भरत के राम को लौटा लाने के लिए चित्रकूट पहुँचने पर जब राम ने उनसे अपना धर्म-संकट बतलाया तब उसी धर्म-प्रवणता ने उन्हें राज्य का भार स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। परन्तु उन्होंने केवल राजा के कर्त्तव्य की कठोरता को स्वीकार

किया, उसके सुख-वैभव को नहीं। सुख-वैभव के स्थान पर उन्होंने वनवासी का कष्टमय जीवन स्वीकार किया जिससे उनके उदाहरण से धर्मोल्लंघन की आशंका दूर हो जाय।

परन्तु वास्तविक मानव-जीवन इतना सरल नहीं है जितना सामान्यतः बाहर से दीखता है, यह ऊपर के वर्णन से प्रकट हो सकता है। मनुष्य के स्वभाव में एक ही भावना की प्रधानता नहीं रहती। प्रायः एक से अधिक भावनाएँ उसके जीवन में स्थिर होकर उसके स्वभाव की विशेषता लक्षित कराती हैं। जब कभी ऐसी दो भावनाएँ एक दूसरे की विरोधिनी होकर आती हैं तब यदि कवि इनके चित्रण में किंचित् भी असावधानी करे तो उसका चित्रण सदोष हो जायगा। उदाहरण के लिए गोस्वामी जी ने लक्ष्मण को प्रचंड प्रकृति दी है, परन्तु साथ ही उनके हृदय में राम के लिए अगाध भक्ति का भी सृजन किया है। जहाँ पर इन दोनों बातों का विरोध न होगा वहाँ पर इसके चित्रण में उतनी कठिनाई नहीं हो सकती। जनक के 'बीरबिहीन मही मैं जानी' कहते ही वे तमक कर कह उठते हैं—

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई॥

परशुराम के रोषभरे वचनों को सुनकर वे कोरी कोरी सुनाने में कुछ उठा नहीं रखते—

भृगुवर परसु देवावहु मोहीं। बिप्र बिचारि बचउँ नृपद्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरही के बाढ़े।

और भरत को ससैन्य चित्रकूट की ओर आते देख राम के अनिष्ट की आशंका होते ही वे बिना आगा-पीछा सोचे भरत का काम तमाम कर डालने के लिए उद्यत हो जाते हैं—

जिमि करि-निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥

इसी प्रकार सरल रामभक्ति का परिचय भी उनके जीवन के चाहे

जिस अंश में देखने को मिलेगा। गोस्वामी जी के कौशल की परख वहाँ पर हो सकती है जहाँ पर राम के प्रति भक्तिभावना और सहज प्रचंड प्रकृति एक दूसरे के विरुद्ध होकर आवें। यदि ऐसे स्थल पर दोनों भावों का निर्वाह हुआ तो समझना चाहिए कि वे चरित्र-चित्रण में कृतकार्य हुए हैं।

भगवान् श्री रामचन्द्र जी को कैकेयी ने वन जाने का उपदेश दिया है। वचनबद्ध दशरथ 'नाहीं' कर सकते हैं। ऐसे अवसर पर यह आशा करना कि लक्ष्मण क्रोध से तिलमिलाकर धनुष-बाण लेकर सबका विरोध करने के लिए उद्यत हो जायँगे, स्वाभाविक ही है। परन्तु देखते हैं कि गोस्वामी जी ने लक्ष्मण से इस समय ऐसा कुछ भी नहीं करवाया है। परन्तु यह जितना ही सामान्य पाठक की आशा के विरुद्ध हुआ है, उतना ही सप्रयोजन भी है, क्योंकि यहाँ पर क्रोध प्रकट करना लक्ष्मण के स्वभाव के विपरीत होता। ऐसा करने से वे राम की रुचि के विरुद्ध काम करते। लक्ष्मण को वनवास की आज्ञा का तब पता चला जब राम वन के लिए तैयार हो चुके थे। एक पदानुसारी भृत्य की भाँति वे भी चुपचाप वन जाने की तैयारी करने लगे। यह बात नहीं कि उन्हें क्रोध न हुआ हो, क्रोध हुआ अवश्य था, परन्तु उन्होंने उसे दबा लिया। ससैन्य भरत को चित्रकूट आते हुए देखकर—

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिलि आजू॥

कहकर उन्होंने जिस रिस का उल्लेख किया है वह यही रिस था जिसे उन्होंने उस समय प्रकट नहीं होने दिया था। गोस्वामी जी ने भी इस अवसर की गंभीरता की रक्षा के उद्देश्य से लक्ष्मण के मन की दशा का उल्लेख नहीं किया।

इसी प्रकार लंका जाने के लिए प्रस्तुत श्री रामचन्द्र जी ने ३ दिन तक समुद्र से रास्ता देने के लिए विनय की। लक्ष्मण को विनय की

बात पसंद न आई। जब रामचन्द्र जी ने समुद्र को अग्निबाणों से सोखने का विचार करके धनुष खींचा तब लक्ष्मण की प्रसन्नता दिखलाकर गोस्वामी जी ने इस अरुचि की ओर संकेत किया है।

भावद्वन्द्व का एक और उदाहरण लीजिए। कैकेयी के कहने पर रामचन्द्र जी ने वन जाने का निश्चय कर लिया है। इस समय दशरथ का राम-प्रेम और उनकी सत्यप्रतिज्ञता दोनों कसौटी पर हैं और उनके साथ-साथ गोस्वामी जी का चरित्र-चित्रण का कौशल भी है। पहले तो वन जाने की आज्ञा गोस्वामी जी ने दशरथ के मुँह से नहीं कहलवाई है। 'तुम वन चले जाओ' अनन्य प्रेम के कारण दशरथ यह कह नहीं सकते थे। वे नहीं चाहते थे कि राम वन जायँ। वे चाहते तो इस समय अपने वचन की अवहेलना करके रामचन्द्र को वन जाने से रोकने का प्रयत्न कर सकते थे। परन्तु वचनभंग करने का विचार भी उनके मन में नहीं आया। हाँ, वे मन ही मन देवतों को मनाते रहे कि राम स्वयं ही—

बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु ॥

सत्यप्रतिज्ञ दशरथ अपमानित पिता होकर रहना अच्छा समझते थे परन्तु राम का बिछोह उन्हें असह्य था। उनका यह राम-प्रेम कोई छिपी बात नहीं थी। कैकेयी को समझाती हुई विप्रवधुओं ने कहा था—'नृप कि जिइहि बिनु राम'। लक्ष्मण को समझाते हुए राम ने इस आशंका की ओर संकेत किया था—'राउ वृद्ध मम दुख मन माहीं'। हुआ भी यही। वचनों की रक्षा में जो राजा छाती पर पत्थर रखकर प्रिय पुत्र राम को वन जाते हुए देखते हैं, उन्हीं को हम राम के विरह में स्वर्ग जाते हुए देखते हैं।

जहाँ मानव-मनोवृत्तियों के सूक्ष्म ज्ञान ने गोस्वामी जी से चरित्रविधान में स्वाभाविकता की प्राणप्रतिष्ठा कराई वहाँ साथ ही उसने रस की धारा बहाने में भी उनको सहायता दी, क्योंकि रसों के आधार भाव ही हैं। गोस्वामी जी केवल भावों के शुष्क मनो-

वैज्ञानिक विश्लेषक न थे, उन्होंने उनके हलके और ग रूप ों क एक दूसरे के साथ संश्लिष्टावस्था में देखा था, जैसा कि वास्तविक जगत् में देखा जाता है। रामचरितमानस की विस्तीर्ण भूमि में इन्हीं के स्वाभाविक संयोग से उनकी रसप्रसविनी लेखनी सब रसों की धारा बहाने में समर्थ हुई है। प्रेम को उन्होंने कई रूपों में स्थायित्व दिया है। गुरुविषयक रति, दाम्पत्य प्रेम, वात्सल्य, भगवद्विषयक रति या निर्वेद सभी हमें रामच रतमानस में पूर्णता को पहुँचे हुए मिलते हैं। गुरुविषयक रति का आनन्द हमें विश्वामित्र के चेले राम-लक्ष्मण देते हैं जो गुरु से पहले जागकर उनकी सेवा-शुश्रूषा में संलग्न दिखाई देते हैं। भगवद्विषयक रति की सबसे गहरी अनुभूति उनकी विनय-पत्रिका में होती है, यद्यपि उनके अन्य ग्रन्थों में भी इसकी कमी नहीं है। शृंगार-रस के प्रवाह में पाठकों को आप्लुत करने में गोस्वामी जी ने कोई कसर नहीं रक्खी है। परन्तु उनका शृंगार-रस रीतिकाल के शृंगारी कवियों के शृंगार की भाँति कामुकता का नग्न नृत्य न होकर सर्वथा मर्यादित है। शृंगार-रस यदि अश्लीलता से बहुत दूर पवित्रता की उच्च भूमि में नहीं उठा है तो वह गोस्वामी जी की कविता में। जहाँ परमभक्त सूरदास भी अश्लीलता के पंक में पड़ गये हैं वहाँ गोस्वामी जी ने अपनी कविता में लेशमात्र भी दुर्भावना नहीं आने दी है—

> करत बतकही अनुज सन, मन सियरूप लोभान।
> मुखसरोज मकरंद छबि, करइ मधुप इव पान॥
> देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
> निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

सचमुच सरल प्रेममय यह जोड़ी हर एक के हृदय में घर कर लेती है। इनका यशोगान करती हुई गोस्वामी जी की वाणी धन्य है, जिसने वासना-विहीन शुद्ध दाम्पत्य प्रेम का यह परम पवित्र

चित्र लोक के समक्ष रक्खा है। जब कोई विदेशी कहता है कि हिन्दी के कवियों ने प्रेम को वासना और स्त्री को पुरुष के विलास की ही सामग्री समझकर हिन्दी-साहित्य को गंदगी से भर दिया है तब 'यह लाञ्छन सर्वांश में सत्य नहीं है,' यह सिद्ध करने के लिए गोस्वामी जी की रचनाओं की ओर आसानी से संकेत किया जा सकता है।

गोस्वामी जी के विप्रलम्भ शृंगार की मृदुल कठोरता श्री सीता जी के हरण के समय भगवान् राम के विलाप में पूर्णतया प्रत्यक्ष होती है।

करुणरस की धारा राम के वनवासी होने पर और लक्ष्मण को शक्ति लगने पर फूट पड़ती है। राम के वनवासी होने पर तो शोक की छाया मनुष्यों ही पर नहीं, पशुओं पर भी पड़ी। जिस रथ पर राम को सुमन्त्र कुछ दूर तक पहुँचा आया था, लौट आने पर उसमें जुते हुए घोड़ों की आकुलता देखिए—

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं। जनु बिन पंख बिहँग अकुलाहीं॥
नहिं तृन चरहिँ न पिअहिं जल, मोचहिं लोचन बारि॥

घोड़ों की जब यह दशा थी तब पुरवासियों की और विशेषकर उनके कुटुम्बीजनों की क्या दशा हुई होगी!

जनक के 'बीरबिहीन मही मैं जानी' कहने पर लक्ष्मण की आकृति में जो परिवर्तन हुआ उसमें मूर्त्तिमान् रौद्ररस के दर्शन होते हैं—

माखे लखनु कुटिल भइँ भौहें। रदपट फरकत नयन रिसौहें॥

वीर और बीभत्सरस का तो मानो लंकाकांड स्रोत ही है। शिव धनुष के भंग होने पर चारों ओर जो आतंक छा जाता है उसमें भयानक रस की अनुभूति होती है—

भरे भुवन घोर कठोर रव रविबाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महिं अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।

श्री रामचन्द्र जी से सती और कौसल्या को एक ही साथ कई रूप दिखलाकर उन्होंने अद्भुतरस का चमत्कार दिखलाया। शिव जी की बरात के वर्णन और नारद-मोह में हास्यरस के फुहारे छूटते हैं। स्वयं राम-कथा के भीतर कृत्रिम रूप बनाकर आई हुई वास्तव में कुरूपा शूर्पणखा के राम के प्रति इस वाक्य से ओंठ मुलक ही जाते हैं—

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखिउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी। मन माना कछु तुम्हहिं निहारी॥

लक्ष्मण इस पर मन ही मन खूब हँसे थे। इसी कारण जब श्रीराम जी ने उसे उनके पास भेजा तो उनसे भी न रहा गया। बोले—उन्हीं के पास जाओ, वे राजा हैं, उन्हें सब कुछ शोभा दे सकता है।

प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कुछ करहिं उनहिं सब छाजा॥

इतना होने पर भी यह कहीं नहीं भान होता कि गोस्वामी जी ने प्रयत्न-पूर्वक आलम्बन, उद्दीपन, संचारी आदि को जुटाकर रसपरिपाक का आयोजन किया हो। प्रबन्ध के स्वाभाविक प्रवाह के भीतर स्वतः ही रस की तलैयाँ बँध गई हैं जिनमें जी भरकर डुबकी लगाकर ही साहित्यिक तैराक आगे बढ़ने का नाम लेता है।

कला का एक प्रधान उद्देश्य जीवन की व्याख्या करते हुए उसे किसी उच्चतम आदर्श में ढालने का प्रयत्न करना है। भावाभिव्यक्ति में जितनी सरलता होगी उतनी ही इस उद्देश्य में सफलता भी होगी। कला के इसी उद्देश्य ने गोस्वामी जी को संस्कृत का विद्वान् होने पर भी उन्हें देववाणी की ममता छोड़कर जनवाणी का आश्रय लेने के लिए बाध्य किया था। संस्कृत, जिसमें अब तक रामकथा संरक्षित थी, अब जनसाधारण की बोल-चाल की भाषा न रहकर पण्डितों के ही मंडल तक बँधी रह गई थी। इससे रामचरितमानस का आनन्दपूर्ण लाभ सर्वसाधारण न उठा सकते थे। इसी से गोस्वामी जी को भाषा में रामचरित

लखने की प्रेरणा हुई, पर पंडित लोगों में उस समय भाषा का आदर न था। भाषा कविता की वे हँसी उड़ाते थे।

भाषा भनति मोर मति भोरी । हँसिबे जोग हँसे नहिं खोरी ॥

परन्तु गोस्वामी जी ने उनकी हँसी की कोई परवा नहीं की, क्योंकि वे जानते थे कि वही वस्तु मानास्पद है जो उपयोगी भी हो। जो किसी के काम न आवे उसका मूल्य ही क्या ?

का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिअत साँच।
काम जो आवै कामरी का लै करै कमाँच ॥

अतएव उन्होंने भाषा ही में कविता की और इस प्रकार रामचरित को देश भर में घर घर पहुँचाने का उपक्रम किया।

दिग्दर्शन-मात्र कराने के लिए हम गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रबन्ध-पटुता का एक उदाहरण देते हैं। कथा बालकांड की है। धनुष टूट चुका है। सीता जी सखियों को साथ लिये हुए रामचन्द्र जी को जयमाल पहनाने के लिए आ रही हैं। उनके रूप-लावण्य को देखकर दुष्टप्रकृति के राजा लोग, जो धनुष न तोड़ सकने के कारण लज्जित हो चुके हैं, लालायित हो गये और—

उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥
लेहु छुड़ाय सीय कहँ कोऊ। धरि बाँधहु नृप-बालक दोऊ ॥
तोरें धनुष चाँड़ नहिं सरई । जीअत हमहिं कुअँरि को बरई ॥
जो बिदेह कुछ करै सहाई । जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥

इस प्रकार स्थिति भयावह हो चली थी। यदि लड़ाई छिड़ जाती तो रक्तपात हुए बिना न रहता। अतएव गोस्वामी जी ने अपनी प्रबन्ध-पटुता का यहाँ स्पष्ट परिचय दे दिया है। उन्होंने वाल्मीक जी के दिये हुए घटना-क्रम को बदलकर इस स्थित को सँभाल लिया।

खरभर देखि बिकल नरनारी। सब मिलि देहिं महीपन गारी।
तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा ॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने।
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड विराजा ॥

सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसबस कछुक अरुन होइ आवा।
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
बृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनि-बसन तून दुइ बाँधे। धनुसर कर कुठार कल काँधे॥
संतवेष करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीररसु, आयेउ जहँ सब भूप॥
देखत भृगुपति वेषु कराला। उठे सकल भय विकल भुआला।
पितु समेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानै जनु आइ खुटानी॥

बस, सारी परिस्थिति ने पलटा खाया और कुटिल राजाओं का शेखी हाँकना बन्द होकर उनको अपनी रक्षा की चिंता ने ग्रस लिया।

ऐसी पटुता गोस्वामी जी ने अनेक स्थलों पर दिखाई है। पर यहाँ तो उदाहरणस्वरूप एक घटना का उल्लेखमात्र कर दिया गया है।

(१६) गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव

(१) अध्ययन—महाकवि तुलसीदास का जो व्यापक प्रभाव भारतोय जनता पर है उसका कारण उनकी उदारता, उनकी विलक्षण प्रतिभा तथा उनके उद्गारों की सत्यता आदि तो हैं ही, साथ ही उसका सबसे बड़ा कारण है उनका विस्तृत अध्ययन और उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति। "नानापुराणनिगमागमसम्मत" रामचरित-मानस लिखने की बात अन्यथा नहीं है, सत्य है। भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों को गोस्वामी जी ने विविध शास्त्रों से ग्रहण किया था और समय के अनुरूप उन्हें अभिव्यंजित करके अपनी अपूर्ण दूरदर्शिता का परिचय दिया था। यों तो उनके अध्ययन का विस्तार अत्यधिक था, परन्तु उन्होंने रामचरितमानस में प्रधानतः वाल्मीकि रामायण का आधार लिया है। साथ ही उन पर वैष्णव महात्मा रामानंद की छाप स्पष्ट देख पड़ती है। उनके रामचरितमानस में मध्यकालीन धर्मग्रंथों—विशेषतः अध्यात्मरामायण, योगवाशिष्ठ तथा अद्भुत

रामायण—का प्रभाव कम नहीं है। भुशुंडिरामायण और हनुमन्नाटक नामक ग्रंथों का ऋण भी गोस्वामी जी पर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकिरामायण की कथा लेकर उसमें मध्यकालीन धर्म-ग्रंथों के तत्त्वों का समावेश कर साथ ही अपनी उदार बुद्धि और प्रतिभा से अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर उन्होंने जिस अनमोल साहित्य का सृजन किया, वह उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति के साथ ही उनकी प्रगाढ़ मौलिकता का भी परिचायक है।

(२) उदारता और सारग्राहिता—गोस्वामी जी की समस्त रचनाओं में उनका रामचरितमानस ही सर्वश्रेष्ठ रचना है और उसका प्रचार उत्तर-भारत में घर घर है। गोस्वामी जी का स्थायित्व और गौरव इसी पर सबसे अधिक अवलम्बित है। रामचरितमानस करोड़ों भारतीयों का एकमात्र धर्म-ग्रंथ है। जिस प्रकार संस्कृतसाहित्य में वेद, उपनिषद् तथा गीता आदि पूज्य दृष्टि से देखे जाते हैं, उसी प्रकार आज संस्कृत का लेश-मात्र ज्ञान न रखनेवाली जनता भी, करोड़ों की संख्या में, रामचरितमानस को पढ़ती और वेद आदि की ही भाँति उसका सम्मान करती है। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि गोस्वामी जी के अन्य ग्रंथ निम्नकोटि के हैं। गोस्वामी जी की प्रतिभा सबमें समान रूप से लक्षित होती है, किन्तु रामचरितमानस की प्रधानता अनिवार्य है। गोस्वामी जी ने हिन्दू-धर्म का सच्चा स्वरूप राम के चरित्र में अन्तर्निहित कर दिया है। धर्म और समाज की कैसी व्यवस्था होनी चाहिए; राजा-प्रजा, ऊँच-नीच, द्विज-शूद्र आदि सामाजिक सूत्रों के साथ माता-पिता, गुरु-भाई आदि पारिवारिक सम्बन्धों का कैसा निर्वाह होना चाहिए आदि जीवन के गंभीर प्रश्नों का बड़ा ही विशद विवेचन इस ग्रंथ में मिलता है। हिन्दुओं के सब देवता, उनकी सब रीति-नीति,

वर्ण-आश्रम-व्यवस्था तुलसीदास जी को स्वीकार है। शिव उनके लिए उतने ही पूज्य हैं जितने स्वयं रामचन्द्र। वे भक्त होते हुए भी ज्ञानमार्ग के अद्वैतवाद पर आस्था रखते हैं। संक्षेप में वे व्यापक हिंदू-धर्म के संकलित संस्करण हैं और उनके रामचरितमानस में उनका वह रूप बड़ी ही मार्मिकता से व्यक्त हुआ है। उनकी उत्कट रामभक्ति ने उन्हें इतना ऊँचा उठा दिया है कि क्या कवित्व की दृष्टि से और क्या धार्मिक दृष्टि से रामचरितमानस को किसी अलौकिक पुरुष की अलौकिक कृति मानकर, आनंद-मग्न होकर, हम उसके विधि-निषेधों को चुपचाप स्वीकार करते हैं। किसी छोटे भूभाग में नहीं, सारे उत्तर-भारत में, करोड़ों व्यक्तियों द्वारा आज उनका रामचरितमानस हमारी सारी समस्याओं का समाधान करनेवाला और अनंत कल्याणकारी माना जाता है। इन्हीं कारणों से उसकी प्रधानता है।

ऊपर के विवेचन का यह अर्थ नहीं है कि गोस्वामी जी ने अध्ययन और प्रतिभा के बल से ही अपने ग्रंथों की रचना की तथा वे स्वतः अपनी रचनाओं के साथ एकाकार नहीं हुए। न उसका यही आशय है कि सामाजिक धर्म, जाति-पाँति की व्यवस्था देवता-देवी की पूजा ही गोस्वामी जी की रचना की प्रधान वस्तुएँ हैं। वास्तविक बात तो यह है कि गोस्वामी जी भारतीय आध्यात्मिक साधना की धारा में पूर्णरूप से निमज्जित हो चुके थे और उनका सर्वोपरि लक्ष्य उक्त साधना को जनता के जीवन में भर देना था। काव्य या साहित्य की रचना अथवा वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा का प्रयास तो आनुषंगिक रूप से गोस्वामी जी के लक्ष्य थे। प्रधानतः तो वे भक्त थे और भक्ति के स्रोत में डूबे हुए थे। राम की भक्ति ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य थी और उसी उपलक्ष्य से वे अन्य समस्त कार्य करते थे। भारत की चिर-प्रचलित आध्यात्मिक साधना को सामयिक साँचे में ढालकर और उसे रामकथा के

प्रबंध में सन्निहित कर उन्होंने जन-समाज के मानस को आप्लावित कर दिया। इस देश का कोई कवि सामूहिक ख्याति प्राप्त करने के लिए अध्यात्मविद्या का संग नहीं छोड़ सकता। विशेषतः जिस कवि का मुख्य उद्देश्य समाज को भक्ति की धारा में निष्णात करना रहा हो, उसे तो स्वतः अध्यात्मशास्त्र का साधक और अनुयायी होना ही चाहिए। गोस्वामी जी भी ऐसे ही कवि थे।

(३) रामचरित की व्यापकता—कहा जाता कि गोस्वामी तुलसीदास ने नर-काव्य नहीं किया। केवल एक स्थान पर अपने काशीवासी मित्र टोडर की प्रशंसा में दो-चार दोहे कहे हैं, अन्यत्र सर्वत्र अपने उपास्य देव राम की ही महिमा गाई है और राम की कृपा से गौरवान्वित व्यक्तियों का, राम-कथा के प्रसंग में, नाम लिया है। "कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना, सिर धुनि गिरा लागिपछिताना ॥" का संकेत इस तथ्य की ओर है। यद्यपि गोस्वामी जी ने किसी विशेष मनुष्य की प्रशंसा नहीं की है और अधिकतर अपनी वाणी का उपयोग राम-गुण-कीर्त्तन में ही किया है; पर रामचरित के भीतर मानवता के जो उदात्त आदर्श प्रस्फुटित हुए हैं वे मनुष्य-मात्र के लिए कल्याणकर हैं। दोहावली में उन्होंने सच्चे प्रेम की जो आभा चातक और घन के प्रेम में दिखलाई है, अलोकोपयोगी उच्छृङ्खलता का जो खंडन साखी-शब्दी-दोहाकारों की निन्दा करके किया है, रामचरितमानस में मर्यादावाद की जैसी सुन्दर पुष्टि गुरु की अवहेलना के लिए शिष्य को दंडित करके की है, राम-राज्य का वर्णन करके जो उदात्त आदर्श रक्खा है, उनमें और ऐसे ही अनेक प्रसंगों में गोस्वामी जी की मनुष्यसमाज के प्रति हितकामना स्पष्टतः झलकती देखी जाती है। उनके अमर काव्य में मानवता के चिरंतन आदर्श भरे पड़े हैं।

(४) आंतरिक अनुभूति—यह सब होते हुए भी तुलसीदास जी ने जो कुछ लिखा है, स्वांतःसुखाय लिखा है। उपदेश देने की अभिलाषा से अथवा कवित्वप्रदर्शन की कामना से जो कविता

की जाती है उसमें, आत्मा की प्रेरणा न होने के कारण स्थायित्व नहीं होता। कला का जो उत्कर्ष हृदय से सीधी निकली हुई रचनाओं में होता है वह अन्यत्र मिलना असंभव है। गोस्वामी जी की यह विशेषता उन्हें हिन्दी-कविता के शीर्षासन पर ला रखती है। एक ओर तो वे काव्य-चमत्कार का भद्दा प्रदर्शन करनेवाले कवियों से सहज में ही ऊपर आ जाते हैं और दूसरी ओर उपदेशों का सहारा लेनेवाले नीतिवादी भी उनके सामने नहीं ठहर पाते। कवित्व की दृष्टि से तुलसी की प्रांजलता, माधुर्य और ओज अनुपम तथा मानव-जीवन का सर्वांग निरूपण अप्रतिम हुआ है। मर्यादा और संयम की साधना में गोस्वामी जी संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनके साथ ही जब हम भाषा पर उनके अधिकार तथा जनता पर उनके उपकार की तुलना अन्य कवियों से करते हैं तब उनकी यथार्थ महत्ता का साक्षात्कार स्पष्ट रीति से हो जाता है।

(५) स्वतंत्र उद्भावना—गोस्वामी जी की रचनाओं का महत्त्व उनमें व्यंजित भावों की विशदता और व्यापकता से ही नहीं, उनकी मौलिक उद्भावनाओं तथा चमत्कारिक वर्णनों से भी है। यद्यपि रामायण की कथा उन्हें महर्षि वाल्मीकि से बन बनाई मिल गई थी; परन्तु उसमें भी गोस्वामी जी ने यथोचित परिवर्तन किये हैं। सीता-स्वयंवर से पूर्व फुलवारी का मनोरम वर्णन तुलसीदास जी की अपनी उद्भावना है। धनुषभंग के पश्चात् परशुराम जी का आगमन उन्होंने अपनी प्रबन्ध-पटुता के प्रतीक-स्वरूप रक्खा है। कितनी ही मर्मस्पर्शिनी घटनायें गोस्वामी जी ने अपनी ओर से सन्निहित की है, जैसे सीता जी का अशोक वन में विरह-पीड़ित अवस्था में अशोक से आग माँगना और तत्क्षण हनुमान् जी का मुद्रिका गिराना। हनुमान्, विभीषण सुग्रीव आदि राम-भक्तों का चरित्र तुलसीदास जी ने विशेष

सहानुभूति के साथ अंकित किया है। गोस्वामी जी के भरत तो गोस्वामी जी के ही हैं भक्त के मूर्ति। अपने युग की छाप भी रामचरितमानस में मिलती है, जिससे वह युग-प्रवर्तक ग्रंथ बन सका है। कलियुग के वर्णन में उन्होंने सामयिक स्थिति का व्यंग्यपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। ये सब तुलसी की अपनी मौलिकताएँ हैं, जिनके कारण उनका मानस अन्य प्रांतीय भाषाओं में लिखे हुए राम-कथा के ग्रंथों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और काव्यगुणोपेत बन सका। पूरे ग्रंथ में उपमाओं और रूपकादि अलंकारों की नैसर्गिकता चित्त को विमुग्ध करती है। वह समस्त वर्णन और वे अलंकार रूढ़िबद्ध या अनुकरणशील कवि में आ ही नहीं सकते। गोस्वामी जी में सूक्ष्म मनो-वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि थी, इसका परिचय स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। वे कोरे भक्त ही नहीं थे, प्रत्युत मानवचरित्र, उसकी सूक्ष्मताओं और ऋजु-कुटिल गतियों के पारखी भी थे, यह रामचरितमानस में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। मंथरा के प्रसंग में गोस्वामी जी का यह चमत्कार स्पष्ट लक्षित है। कैकेयी की आत्मग्लानि भी उन्होंने मौलिक रूप से प्रकट कराई है। ऐसे ही अन्य अनेक स्थल हैं। प्रकृति के रम्य रूपों का चित्र खड़ा करने की क्षमता हिंदी के कवियों में बहुत कम है; परन्तु गोस्वामी जी ने चित्रकूट-वर्णन में संस्कृत कवियों से टक्कर ली है। इतना ही नहीं भावों के अनुरूप भाषा लिखने तथा प्रबंध में संबंधनिर्वाह और चरित्र-चित्रण का निरंतर ध्यान रखने में वे अपनी समता नहीं रखते। उत्कट रामभक्ति के कारण उनके रामचरितमानस में उच्च सदाचार का जो एक प्रवाह-सा बहा है, वह तो वाल्मीकि-रामायण से भी अधिक गंभीर और पूत है।

(६) भाषा और काव्यशैली—जायसी ने जिस प्रकार दोहा-चौपाई छन्दों में अवधी भाषा का आश्रय लेकर अपनी पद्मावत लिखी है, कुछ वर्षों के पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी

उसी अवधी भाषा में उन्हीं दोहा-चौपाई छन्दों में अपनी प्रसिद्ध रामायण की रचना की। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि जायसी संस्कृतज्ञ नहीं थे; अतः उनकी भाषा ग्रामीण अवधी थी, उसमें साहित्यकता की छाप नहीं थी। परन्तु गोस्वामी जी संस्कृतज्ञ और शास्त्रज्ञ थे; अतः उन्होंने कुछ स्थानों पर ठेठ अवधी का प्रयोग करते हुए भी अधिकांश स्थलों में संस्कृत-मिश्रित अवधी का व्यवहार किया है। इससे इनके रामचरितमानस में प्रसंगानुसार उपर्युक्त दोनों प्रकार की भाषाओं का माधुर्य दिखाई देता है। यह तो हुई उनके रामचरितमानस की बात। उनकी विनयपत्रिका, गीतावली और कवितावली आदि में ब्रजभाषा व्यवहृत हुई है। शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी यह ब्रजभाषा विकसित होकर गोस्वामी जी के समय तक पूर्णतया साहित्य की भाषा बन चुकी थी, क्योंकि इसमें सूरदास आदि भक्त कवियों की विस्तृत रचनाएँ हो रही थीं। गोस्वामी जी ने ब्रजभाषा में भी अपनी संस्कृतपदावली का सम्मिश्रण किया और उसे उपयुक्त प्रौढ़ता प्रदान की। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहाँ एक ओर जायसी और सूर ने क्रमशः अवधी और ब्रजभाषा में ही काव्यरचना की थी, वहाँ गोस्वामी जी का इन दोनों भाषाओं पर समान अधिकार हुआ और उन दोनों में संस्कृत के समावेश से नवीन चमत्कार उत्पन्न कर देने की क्षमता तो उनकी अपनी है।

गोस्वामी तुलसीदास के विभिन्न ग्रन्थों में जिस प्रकार भाषा-भेद है, उसी प्रकार छन्द-भेद भी है। रामचरितमानस में उन्होंने जायसी की तरह दोहे-चौपाइयों का क्रम रक्खा है; परन्तु साथ ही हरिगीतिका आदि लम्बे तथा सोरठा आदि छोटे छन्दों का भी बीच-बीच में व्यवहार कर उन्होंने छन्द-परिवर्तन की ओर ध्यान रक्खा है। रामचरितमानस के लङ्काकाण्ड में जो युद्धवर्णन है, उसमें चन्द आदि वीर कवियों के छन्द भी लाये गये

हैं। कवितावली में सवैया और कवित्त छन्दों में कथा कही गई है, जो भाटों की परम्परा के अनुसार है। इसमें राजाराम की राज्यश्री का जो विशद वर्णन है, उसके अनुकूल कवित्त छन्द का व्यवहार उचित ही हुआ है। विनयपत्रिका तथा गीतावली आदि में ब्रजभाषा के सगुणोपासक संत-महात्माओं के गीतों की प्रणाली स्वीकृत की गई है। गीत-काव्य का सृजन पाश्चात्य देशों में संगीत शास्त्र के अनुसार हुआ है। वहाँ की लोरिक कविता आरम्भ में वीणा के साथ गाई जाती थी। ठीक उसी प्रकार हिन्दी के गीत-काव्यों में भी संगीत के राग-रागिनियों को ग्रहण किया गया है। दोहावली, बरवै रामायण आदि में तुलसीदास जी ने छोटे छन्दों में नीति आदि के उपदेश दिये हैं अथवा अलङ्कारों की योजना के साथ फुटकर भावव्यंजना की है। सारांश यह कि गोस्वामी जी ने अनेक शैलियों में अपने ग्रन्थों की रचना की है और आवश्यकतानुसार उसमें विविध छन्दों का प्रयोग किया है। इस कार्य में गोस्वामी जी की सफलता विस्मयकारिणी है। हिन्दी की जो व्यापक क्षमता और जो प्रचुर अभिव्यंजना-शक्ति उनकी रचनाओं में देख पड़ती है वह अभूतपूर्व है। उनकी रचनाओं से हिन्दी में पूर्ण प्रौढ़ता की प्रतिष्ठा हुई है।

तुलसीदास जी के महत्त्व का ठीक-ठीक अनुमान करने के लिए उनकी कृतियों की परीक्षा तीन प्रधान दृष्टियों से करनी पड़ेगी। भाषा की दृष्टि से, साहित्योत्कर्ष की दृष्टि से और संस्कृति के संरक्षण तथा उत्कर्ष-साधन की दृष्टि से। इन तीनों दृष्टियों से उन पर विचार करने का प्रयत्न ऊपर किया गया है, जिसके परिणाम-स्वरूप हम यहाँ कुछ बातों का स्पष्टतः उल्लेख कर सकते हैं। हम यह कह सकते हैं कि गोस्वामी जी का ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था और दोनों में ही संस्कृत की छटा उनकी कृतियों में दर्शनीय हुई है। छन्दों और अलंकारों का समावेश भी पूरी सफलता के साथ किया

गया है। साहित्यिक दृष्टि से रामचरितमानस के जोड़ का दूसरा ग्रंथ हिन्दी में नहीं देख पड़ता। क्या प्रबन्ध-कल्पना, क्या संबंध-निर्वाह, क्या वस्तु एवं भावव्यंजना, सभी उच्च कोटि की हुई हैं। पात्रों के चरित्रचित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय मिलता है और प्रकृतिवर्णन में हिन्दी के कवि उनकी बराबरी नहीं कर सकते। अंतिम प्रश्न संस्कृति का है। गोस्वामी जी ने देश के परम्परागत विचारों और आदर्शों को बहुत अध्ययन करके ग्रहण किया है और बड़ी सावधानी से उनकी रक्षा की है। उनके ग्रंथ आज जो देश की इतनी असंख्य जनता के लिए धर्म-ग्रंथ का काम दे रहे हैं, उसका कारण यही है। गोस्वामी जी हिन्दू-जाति, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति को अक्षुण्ण रखनेवाले हमारे प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी यशःप्रशस्ति अमिट अक्षरों में प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी के हृदयपटल पर अनंत काल तक अंकित रहेगी, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। भारतीय समाज की संस्कृति और प्राचीन ज्ञान की रक्षा के लिए गोस्वामी जी का कार्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। किन्तु गोस्वामी जी परम्परा-रक्षा के लिए ही एकमात्र यत्नवान् न थे। वे समय की स्थितियों और आवश्यकताओं को भी समझते थे तथा समाज को नवीन दिशा की ओर अग्रसर करने के प्रयास भी उन्होंने किये। आचार-सम्बन्धिनी जितनी शुद्धि और परिष्कार उन्होंने किया वह सब जातीय जीवन को दृढ़ करने में सहायक बना। यह तो नहीं कहा जा सकता कि तुलसीदास जी परम्परा या रूढ़ियों के बंधन से सर्वथा मुक्त थे, तथापि संस्कृति की रक्षा और उन्नयन के लिए उन्होंने जो महान् कार्य किया उसमें इस बंधन का कुप्रभाव नगण्य-सा है। उनके गुणों का विशाल ऋण हिन्दू-समाज पर है और चर दिन तक रहेगा। इस अकाट्य सत्य को कौन अस्वीकार कर सकता है?

यह एक साधारण नियम है कि साहित्य के विकास की

परम्परा क्रमबद्ध होती है। इसमें कार्य-कारण का संबंध प्रायः ढूँढ़ा और पाया जाता है। एक काल-विशेष के कवियों को यदि हम फूल-स्वरूप मान लें, तो उनके उत्तरवर्ती ग्रंथकारों को फल-स्वरूप मानना होगा। फिर ये फल-स्वरूप ग्रन्थकार समय पाकर अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों के फल-स्वरूप और उत्तरवर्ती ग्रन्थकारों के फूल-स्वरूप होंगे। इस प्रकार यह क्रम सर्वथा चला चलेगा और समस्त साहित्य एक लड़ी के समान होगा जिसकी भिन्न कड़ियाँ उस साहित्य के काव्यकार होंगे। इस सिद्धान्त को सामने रखकर यदि हम तुलसीदास जी के संबंध में विचार करते हैं, तो हमें पूर्ववर्ती काव्यकारों की कृतियों का क्रमशः विकसित रूप तो तुलसीदास जी में देख पड़ता है, पर उनके पश्चात् यह विकास, आगे बढ़ता हुआ नहीं जान पड़ता। ऐसा भास होने लगता है कि तुलसीदास जी में हिन्दी-साहित्य का पूर्ण विकास संपन्न हो गया और उनके अनन्तर फिर क्रमोन्नत विकास की परम्परा बन्द हो गई तथा उसकी प्रगति ह्रास की ओर उन्मुख हुई। सच बात तो यह है कि गोस्वामी तुलसीदास जी में हिन्दी-कविता की जो सर्वतोमुखी उन्नति हुई, वह उनकी कृतियों में चरमसीमा तक पहुँच गई, उसके आगे फिर कुछ करने को नहीं रह गया इसमें गोस्वामी जी की उत्कृष्ट योग्यता और प्रतिभा देख पड़ती है। गोस्वामी जी के पीछे उनकी नकल करनेवाले तो बहुत हुए पर ऐसा एक भी न हुआ जो उनसे बढ़कर हो या कम से कम उनकी समकक्षता कर सके। हिन्दी-कविता के कीर्ति-मंदिर में गोस्वामी जी का स्थान सबसे ऊँचा और सबसे विशिष्ट है। गोस्वामी जी के काव्य में रामभक्ति की परम्परा और उसका उत्कर्ष पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। उनके पश्चात् यह रामभक्ति की धारा उतनी प्रशस्त नहीं रह गई। कविता के क्षेत्र में तो वह क्षीण ही होती चली गई। तुलसीदास जी के पश्चात् रामभक्ति में साम्प्रदायिकता की मात्रा बढ़ी। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। इस सांप्रदायिकता से तुलसीदास जी के काव्य का प्रचार तो बहुत हुआ; पर परिवर्ती कवियों के विकास का मार्ग भी अवरुद्ध हो गया।

—